सर्वश्रेष्ठ आवश्यकताएँ

जै़क पूनन

प्रकाशक:

मसीही सीहित्य संस्था

70, जनपथ, नई दिल्ली–1

SUPREME PRIORITIES
by
Zac Poonen

This book has been copyrighted to prevent misuse.
It should not be reprinted or translated without
written permission from the author.

For further details Please contact:
Christian Fellowship Centre
40 DaCosta Square,
Bangalore – 560084, India
cfc@cfcindia.com, www.cfcindia.com
Tele: +91-080-25477103, Fax: 080-51251291

Or
Pune Christian Fellowship Church
B-21, B U Bhandari Greens, Dhanori,
Pune - 411015, India.
Tele: +91-98500 67885, 86552 02001, (020) 27029027
Email: reachpunecfc@gmail.com

1st Hindi Edition, 1000 copies, 2017

Printed & Published by
MASIHI SAHITYA SANSTHA
70 Janpath, New Delhi - 110001
Ph: 011-23320253, 23320373
E-mail: mssjanpath@gmail.com

₹ 50/-

विषय-सूची

अध्याय		**पृष्ठ संख्या**
	प्राक्कथन	5
	प्रस्तावना	7
1.	**आवश्यकताओं का उचित मूल्यांकन**	9
2.	**एक बात अवश्य है**	13
	बाइबल की प्रभुत्व शक्ति	
	परमेश्वर के वचन सुनने का महत्व	
	परमेश्वर के वचन का प्रभाव	
3.	**एक वर मैंने यहोवा से माँगा है**	33
	प्रेम–मनुष्य के साथ परमेश्वर के सब व्यवहारों का आधार	
	प्रेम–हमारे समर्पण की प्रेरणा	
	प्रेम–हमारे आत्मिक होने की वास्तविक जाँच	
4.	**तुझ में एक बात की घटी है**	49
	क्रूस का अर्थ अलगाव	
	क्रूस विजयी बनाता है	
5.	**केवल यह एक काम करता हूँ**	65
	अवरोधक बातें	
	सामर्थदायक शक्तियाँ	
6.	**उसने परमेश्वर को प्रसन्न किया**	85

प्राक्कथन

मसीही जीवन की "सर्वश्रेष्ठ आवश्यकताओं" पर लिखी इस पुस्तक को मैं छात्रों के लिए उपयुक्त समझता हूँ तथा इसकी प्रशंसा करते हुए मुझे अति हर्ष होता है। इसके लेखक जैक पूनन एक धार्मिक परिवार से हैं। जिस वर्ष उन्हें भारतीय नौसेना में सेवा पद मिला, उसी वर्ष उन्हें प्रभु यीशु में उद्धार का निश्चय प्राप्त हुआ। सात वर्षों उपरान्त सन् 1966 में, उन्होंने पूरे समय के लिए परमेश्वर की सेवकाई करने की बुलाहट सुनी। इसके बाद उन्होंने अपना पद त्यागा। (यह उन गलील निवासियों का स्मरण दिलाता है जिन्होंने अपनी नावें छोड़कर मसीह का अनुगमन किया था। परमेश्वर की बुलाहट बारम्बार होने वाला आश्चर्यकर्म है)।

उस दिन से ज़ैक पूनन ने स्वयं को मसीह यीशु में जीवन के वचन की सेवकाई के लिए समर्पित कर दिया। जो प्रभु की खोज में हैं, उनकी सहायता और प्रोत्साहन के लिए उन्होंने स्वयं को दे दिया। इस कार्य में उन्हें अपनी पत्नी एनी का, जो स्वयं डॉक्टर हैं, सहयोग प्राप्त है।

इस पुस्तक को पढ़ते हुए मैं तत्काल इसके सन्देश की स्पष्ट वास्तविकता से प्रभावित हुआ। करीब-करीब प्रत्येक पृष्ठ पर अच्छी बातें लिखी हैं। मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों को नए तौर से अपने अपूर्व प्रभु की सेवा करने तथा उससे प्रेम करने के लिए समर्पण की चुनौती दिए बिना नहीं रह सकती। जीवन में इस सेवा की तुलना में कोई स्वतन्त्रता नहीं है।

-ऐंगस आई॰ किनियर

प्रस्तावना

अक्टूबर 1968 में, वेलौर के मसीही मेडिकेल कॉलेज में "इवैन्जलिकल यूनियन" द्वारा सभाएँ आयोजित की गई थी। उन सभाओं में दिए गए सन्देशों का क्रमवार संकलन इस पुस्तक में है।

मैं लन्दन के डॉ॰ ऐंगस आई॰ किनियर का अति अनुग्रहीत हूँ। उन्होंने अपने व्यस्त जीवन के मध्य, इस पुस्तक की प्रतिलिपि को पढ़ने का कष्ट किया। उनके बहुमूल्य सुझावों के लिए मैं उनका आभारी हूँ उन्होंने दया से इस प्रतिलिपि को तैयार करने की भी व्यवस्था की।

मैं "इन्टरनेशनल फेलोशिप ऑफ स्टूडेन्ट्स" के डॉ॰ टी॰ नॉरटन का तथा "वर्ल्ड इवैन्जलाइज़ेशन क्रूसेड के मि॰ जॉन केनेडी का भी कृतज्ञ हूँ। उन्होंने प्रतिलिपि को पढ़कर लाभप्रद सुझाव प्रस्तुत किए।

पुस्तक के प्रेषित करने के साथ ही यही प्रार्थना है कि परमेश्वर लोगों को अपने समीप खींचने के लिए इसका प्रयोग करें। काश यह प्रभिप्राय पूर्ण हो, तथा सब महिमा परमेश्वर की ही हो!

ज़ैक पूनन

1

आवश्यकताओं का उचित मूल्याँकन

एक नेत्रहीन व्यक्ति सौ रुपयों का चैक फेंक देता है और चमकीले कागज के टुकड़ों को जकड़े रहता है जिसका कोई महत्व नहीं होता। चमकीले कागज का स्पर्श उसे चिकना प्रतीत होता है इसीलिए उसे चैक की अपेक्षा अधिक महत्व देता है। नेत्रहीन होने के कारण उसे ज्ञान नहीं कि किन बातों का अधिक महत्व है। उसी के सदृश्य दो वर्षीय बालक भी चैक की अपेक्षा सस्ते खिलौने का अधिक अभिलाषी होता है। अपरिपक्व होने के कारण यह वास्तविक महत्व की बातों से अज्ञात रहता है।

आज विश्व के असंख्य ज्ञानवान स्त्री-पुरुषों की भी यही स्थिति है। वे अनजाने में ही इस प्रकार कर रहे हैं! क्या आपको प्राथमिकताओं की यथोचित जानकारी है? प्राथमिक महत्व की बातों से अज्ञान रहने पर हममें से किसी का भी जीवन बर्बाद हो सकता है। आधुनिक समय में संसार की सर्वाधिक दुःखद घटना यही है कि अनेक मानव जीवन निष्फल हैं। ऐसी निष्फलता धर्म-रहित व्यक्तियों के ही मध्य नहीं पाई जाती, किन्तु धार्मिक व्यक्तियों के मध्य पाई जात हैं।

मनुष्य जन्म से ही आत्मिक रूप से अन्धा है। अतः वह वर्तमान और अनन्त की बातों के परस्पर मूल्य निर्धारण में असमर्थ है। परिणामस्वरूप वह उसी चेष्टा में अपना समय और शक्ति लगाता है कि साँसारिक धन, सम्मान और सुख प्राप्त करे। वह यह नहीं समझ पाता कि "देखी हुई (समस्त) वस्तुएँ थोड़े ही दिन की हैं," "जबकि (सिर्फ) अनदेखी वस्तुएँ (ही) सदा बनी रहती हैं" (2 कुरि॰ 4:18)। प्रभु यीशु ने भी अपने युग के धार्मिक लोगों की प्राथमिक बातों को महत्वहीन समझने की चुनौती दी। उसने उनसे कहा कि यदि व्यक्ति समस्त संसार को प्राप्त करे तो उसे कोई लाभ नहीं, यदि ऐसा करने से

उसे अपने प्राणों की हानि उठानी पड़े। यदि व्यक्ति का प्रभु यीशु द्वारा परमेश्वर से उचित सम्बन्ध नहीं है तो एक दिन आएगा जब वह अपने निर्माता के समक्ष खड़ा होगा। उस दिन वह जान लेगा कि पृथ्वी पर प्राप्त और संचित की हुई उसकी समस्त वस्तुएँ मूल्यहीन है।

असंख्य विश्वासी भी ऐसे हैं जिनके "पाप क्षमा हुए" हैं तथा जो "स्वर्ग के मार्ग" पर हैं, तौ भी उन्हें मूल्यों का उचित ज्ञान नहीं। न्याय के दिन उन्हें विस्मय होगा कि यद्यपि उनकी आत्मा बच गई है, तौभी उनका जीवन बर्बाद गया है। वे दर्शकों की नाई अपने उद्धार से सन्तुष्ट, आनन्द पूर्वक कोरस गाते, अन्यों को परमेश्वर द्वारा उपयोग में लाये जाते देखते किनारे बैठे हुए हैं। वे इस बात से अनभिज्ञ हैं कि परमेश्वर उन्हें भी कार्यक्षेत्र में चाहता है। समय-समय पर उन्हें आश्चर्य होता हैं कि अन्य मसीहियों के सदृश्य उनका भी जीवन फलदायक, आनन्द तथा सामर्थ पूर्ण क्यों नहीं है। अपने आत्मिक जीवन में जागृति लाने के लिए वे अनेक मसीही सभाओं में भाग ले सकते हैं, किन्तु तौभी उनका मनुष्यत्व दुर्बल तथा पीड़ित होता है। कभी-कभी उनकी महत्वाकाँक्षा होती है कि मसीही जीवन के उच्च स्तर तक पहुँचें, किन्तु वे शीघ्र ही अक्सर पहले से भी पीछे हट जाते हैं। इसका कारण क्या है? साधारणतः यह अत्यन्त सरल है: उन्होंने सही मूल्याँकन नहीं किया है। उक्त उदाहरण के नेत्रहीन व्यक्ति और बालक के सदृस्य उन्होंने बारम्बार अपनी अज्ञानतावश सच्चे आत्मिक धन को तिलाँजलि दी है तथा निःसार वस्तुओं को जकड़े रहे हैं। परमेश्वर का अभिप्राय था कि वे धनाढ्य हों, तौभी वे आत्मिक रूप से दिवालिये का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

प्रभु यीशु का सदैव यही प्रयत्न था कि अपने समीप आने वाले व्यक्तियों के अन्धेपन को दूर करे। उसने उन्हें सिखाया कि वास्तव में जीवन की सर्वोच्च प्राथमिकता क्या है? उसने मार्था से कहा, "एक बात अवश्य है"? एक धनाढ्य नौजवान से उसने कहा, "तुझ में एक बात की घटी है"। इन शब्दों में उसने इस बात पर जोर दिया कि उनमें से प्रत्येक के जीवन में क्या प्राथमिकता होनी चाहिए। पुराने नियम के युग के निवासी सिर्फ दाऊद के लिए ही कहा गया, "मुझे एक मनुष्य... मेरे मन के अनुसार मिल गया है"। वास्तव में उसने प्राथमिक महत्व की बातों को प्रथम स्थान दिया था! उसने कहा, "एक वर मैंने यहोवा से माँगा है"। मसीही धर्म के महान प्रेरित पौलुस ने भी सही बातों को प्राथमिक स्थान देने में सफलता प्राप्त की। उसने कहा, "केवल यह एक काम करता हूँ"। इसी विषय को अपना कर, यीशु नासरी के स्वर्गारोहण के पश्चात् पौलुस ने इस संसार में सर्वाधिक प्रभावशाली जीवन (अनन्त काल के दृष्टिकोण से) व्यतीत किया।

वर्तमान समय में संसार का वातावरण, हम सभों को बिना प्रतिवाद के प्राथमिकताओं की गलत अनुमति प्रदान करता है। उससे प्रभावित होकर हम जीवन में गलत बातों को प्राथमिक महत्व देते हैं, क्योंकि इसका प्रभाव अत्याधिक शक्तिशाली है। मनुष्य जाति के इतिहास में, पहले से भी अधिक तीव्र गति से यह संसार नैतिक पतन के गर्त में डूबता चला जा रहा है। अन्धकार गहरा होता जाता है और रात्रि हमारे चारों ओर व्याप्त हो जाती है। मसीह की इच्छा थी उनकी कलीसिया इन परिस्थितियों में पृथ्वी का नमक और संसार की ज्योति बने। किन्तु बड़े परिमाण में नमक ने अपना स्वाद खो दिया है और प्रकाश ने अपनी ज्योति। विश्वासी घरों में भी भ्रष्टाचार तथा अन्धकार ने प्रवेश किया है। फरीसियों के पाखण्ड रूपी खमीर ने कलीसियों में इतनी गहराई तक प्रवेश किया है कि उसे अपनी वास्तविक स्थिति का परिचय नहीं है न ही कलीसिया इसका सामना करने को तैयार है। परमेश्वर की आत्मा का स्वर वे ही सुन सकते हैं जिनके कान सजग हैं। वे यह पुकार सुन सकते हैं कि आज भी वर्तमान प्राथमिकताओं का पुनः मूल्याँकन करें।

इस घने अन्धेरे में मुझे और आपको जो एकमात्र ज्योति प्रदान की गई है, वह बाइबल में पाई जाती है: अतः हम इसे स्वयं खोजकर देखें मसीही के जीवन में किन बातों का प्राथमिक स्थान है। उसे पढ़कर हमें सर्वप्रथम चोट या दुख पहुँच सकता है, क्योंकि बाइबल हमारे वाह्यावरण को भी छेदते हुए अन्दर प्रवेश करती है। किन्तु हम बीसवीं शताब्दी के परमेश्वर के सेवक द्वारा यह ज्ञानपूर्ण वचन सुनकर साहस बाँधें: "मसीह के वचनों से हमें उस समय तक दु:ख और चोट पहुँचती है, जब तक दु:ख और चौट पहुँचाने लायक और कुछ शेष नहीं रह जाता (मत्ती 11:6 में तुलना कीजिए)। यदि हमें प्रभु यीशु के किसी कथन से कभी चोट नहीं पहुँची है, तो यह प्रश्न उठता है कि क्या सचमुच हमने कभी उसको बोलते सुना है। यदि किसी बात के फलस्वरूप व्यक्ति परमेश्वर की सेवकाई के आयोग्य हो जाता है, तो उसके प्रति मसीह के वचन कोमल नहीं हैं। यदि आत्मा द्वारा हमारे मन में परमेश्वर का ऐसा वचन आता है, जिससे चोट पहुँचती है, तो हम निश्चय जानें कि उसके द्वारा वह चाहता है कि हमें चोट पहुँचे।" (ऑस्वल्ड चैम्बर्स द्वारा लिखित "सो सेन्ड आई यू" से उद्धृत)।

"तू जो कहता है... मुझे किसी वस्तु की घटी नहीं; और यह नहीं जानता कि तू... कंगाल... है। इसीलिए मैं तुझे सम्मति देता हूँ... अपनी आँखों में लगाने के लिए सुर्मा ले, कि तू देखने लगे। ...जिसके कान हों वह सुन ले कि आत्मा कलीसियाओं से क्या कहता है" (प्रका० 3:17-22)।

2

एक बात अवश्य है

"फिर जब वे जा रहे थे, तो वह एक गांव में गया, और मार्था नाम एक स्त्री ने उसे अपने घर में उतारा, और मरियम नाम उसकी एक बहिन थी; वह प्रभु के पाँवों के पास बैठकर उसका वचन सुनती थी। पर मार्था सेवा करते-करते घबरा गई और उसके पास आकर कहने लगी; हे प्रभु क्या तुझे कुछ भी सोच नहीं कि मेरी बहिन ने मुझे सेवा करने के लिए अकेली ही छोड़ दिया है? सो उसने कहा, कि मेरी सहायता करें। प्रभु ने उसे उत्तर दिया, मार्था हे मार्था; तू बहुत बातों के लिए चिन्ता करती और घबराती है। परन्तु एक बात अवश्य है, और उस उत्तम भाग को मरियम ने चुन लिया है: जो उससे छीना न जाएगा"। (लूका 10:38-42)

पद 42 के अनुसार मार्था को कहे गए प्रभु यीशु के ये शब्द कितने आश्चर्यजनक हैं: "एक बात अवश्य है"! सम्भव है बहुत से ऐसे अच्छे कार्य हों जिनका आवश्यक हो। परन्तु मसीह ने दृढ़ता पूर्वक कहा, "अन्य बातों की अपेक्षा एक बात अवश्य है। यह एक बात क्या थी?

प्रभु यीशु और उसके शिष्य उसी समय बैतनिय्याह पहुँचे थे। जैसे ही मार्था ने उन्हें देखा, उसने शीघ्र ही आनन्द पूर्वक अपने घर में उन्हें गृहण किया। उसने उन्हें बैठाया और एकदम भोजन की व्यवस्था में जुट गई। इसी समय प्रभु यीशु ने उपस्थित लोगों को उपदेश देना प्रारम्भ किया। यह जानकर कि उसकी बहिन मरियम यीशु के वचनों को सुनने में मग्न बैठी है और कुछ सहायता नहीं कर रही है, वह क्रोधित हो गई। उसने यीशु को देख मानो इन्ही शब्दों में याचना की, "प्रभु मैं तो यहाँ पाकशाला में आप सभों के लिए भोजन तैयार करने में व्यस्त हूँ और मेरी बहिन यहाँ निठल्ले बैठी है उससे कहिए कि आकर मेरी सहायता करे!" उसे आश्चर्य हुआ कि मसीह ने उसी को डाँटा। मसीह ने बताया कि मरियम नहीं किन्तु मार्था ही दोषी है।

यहाँ हम ध्यान दें कि मार्था ने ऐसा कोई पापपूर्ण कार्य नहीं किया था जिसके लिए उसे प्रभु की डाँट मिली। उसने हर्ष पूर्वक मसीह का अपने घर में स्वागत किया था। पाकशाला में भोजन की व्यवस्था उसी के लिए नहीं, परन्तु मसीह और उसके शिष्यों के लिए थी। वह आज विश्वासी की एक तस्वीर है, जिसने मसीह को अपने हृदय में ग्रहण किया है, तथा जो निःस्वार्थ रूप से प्रभु और अन्यों की सेवा में व्यस्त है। तौभी इतने उत्साह के बाद भी प्रभु ने उसे डांटा। हम पूछते हैं कि इसका अभिप्राय क्या है? उसके कार्य में क्या गलती थी? निश्चयतः प्रभु यीशु के इन चार शब्दों में उत्तर छिपा है: "एक बात अवश्य है"। मार्था को उसकी सेवकाई के लिए डाँट नहीं सुननी पड़ी, किन्तु इसलिए कि उसने प्राथमिक बातों को प्रथम महत्व नहीं दिया।

प्रभु के कथनानुसार मरियम ने उत्तम भाग को चुन लिया था। वह क्या था? वह यीशु के कदमों पर बैठ उसका वचन तल्लीन हो सुन रही थी, और कुछ नहीं। परन्तु यही उत्तम भाग है। अन्य बातों से अधिक यही एक बात अवश्य है। हमारे जीवनों में उसकी बात सुनने का कितना स्थान है? हम प्रतिदिन कितना समय देते हैं कि प्रभु के कदमों पर बैठ उसका वचन पढ़ें और उसकी आवाज सुनें? सम्भवतः अधिक नहीं। हम दूसरे कार्यों में लग जाते हैं अतः मार्था के सदृश्य गलती करने में स्वयं को दोषी पाते हैं। सम्भव है कि हम सांसारिक कार्यों में ही संलग्न नहीं रहते। हम मसीही सेवकाई में भी संलग्न रह सकते हैं। हम प्रार्थना, आराधना अथवा साक्षी में सक्रिय भाग ले सकते हैं, तौभी मार्था के समान प्रभु की फटकार सुन सकते हैं।

"उस उत्तम भाग को मरियम ने चुन लिया है"। प्रभु यीशु ने अपने वचन का यही मूल्याँकन किया। उसका यही मूल्याँकन तर्कसंगत रूप से आज भी परमेश्वर के जीवित वचन के प्रति है। अतः हमारा प्रथम विषय यही उत्तम भाग होगा–परमेश्वर का वचन अर्थात् बाइबल। हम तीन दृष्टिकोणों से इस पर विचार करेंगे। सर्वप्रथम हम बाइबल की अधिकार शक्ति पर ध्यान देंगे। इसके पश्चात परमेश्वर के वचन सुनने पर और अन्त में उस परिणाम पर ध्यान देंगे जो परमेश्वर का वचन हमारे जीवनों में ला सकता है।

बाइबल की प्रभुत्व शक्ति

सर्व प्रथम हमें बाइबल की प्रभुत्व शक्ति पर विचार करना होगा क्योंकि अन्य बातों के लिए हमारी नेव यही है। इस बात के निर्णय किए बिना आगे बढ़ना उसी प्रकार संकटकारी होगा, जिस प्रकार बिना नेव डाले निर्माण कार्य में आगे बढ़ना। जब हमें बाइबल के प्रभुत्व शक्ति का निश्चय होगा, तभी हम उसका महत्व समझेंगे तथा हम उसकी सराहना करेंगे।

मसीही परिवार में जन्मे और बढ़े हुए अनेक लोगों ने बाइबल को सहज ही परमेश्वर का वचन स्वीकार किया है। कारण यह है कि ऐसा करने की शिक्षा उन्हें अपने माता-पिता अथवा कलीसिया से मिली। बिना प्रश्न किए इस वचन को स्वीकार करने का कारण निश्चयपूर्वक जानने की उन्होंने कभी परवाह न की। वे कुछ समय तक सन्तुष्ट रहे, जब तक उन्होंने किसी आधुनिक शिक्षक से बाइबल की आलोचनाएँ नहीं सुनी। शिक्षक ने बताया कि, "बाइबल परस्पर विरोधी बातों से भरी पड़ी है। जिन लेखकों के नाम वर्णित हैं, उन्होंने उसे नहीं लिखा, किन्तु उनके बाद रहने वाले लोगों ने लिखा है। बहुधा उनके लेखन का अभिप्राय भी सन्देहास्पद है। अतः यीशु और उसके शिष्यों की वास्तविक शिक्षा को जानना असम्भव है। अन्य महान घटनाओं तक के यथार्थ प्रमाण अपर्याप्त हैं। इन काल्पिक कथाओं पर आधुनिक व्यक्ति विश्वास नहीं कर सकता" शिक्षक इसी प्रकार कह अनेक बातें सिखाता है जिससे उनका पूर्ण विश्वास तहस-नहस हो जाता है। क्यों? कारण यह कि पहले ही उसकी ठीक नेव नहीं डाली गई। परमेश्वर नहीं चाहता कि इस हम बिना जाने बूझे किसी बात पर विश्वास करें। अनेक मसीही अन्यों पर यही प्रभाव डालते हैं, किन्तु यह सर्वथा गलत हैं। परमेश्वर की इच्छा है कि हमारे हृदय के नेत्र प्रकाशमान हों कि उन्हें हम समझें।

बाइबल की यह शिक्षा है कि हमारे मनों को शैतान ने अन्धा कर दिया है। अतः पापी होने के नाते हम अपने ज्ञान से परमेश्वर की बातों को नहीं समझ सकते। इस प्रकार हम परमेश्वर के प्रकाशन पर पूर्णत अवलम्बित हैं अर्थात् इस बात पर कि परमेश्वर अपना सन्देश हम पर प्रकट करे। (वह सच्चे खोजी के लिए ऐसा करने को सदैव तैयार रहता है।) हमारे मन पापी है इसलिए गलती करने योग्य हैं। हम अपने ज्ञान में सिद्ध नहीं हैं। यदि हम अपने सीमित और पापी मन के ज्ञान से बाइबल की कुछ बातों को समझने में असमर्थ रहें, तो हमें विस्मित नहीं होना चाहिए। इसका अर्थ यह है नहीं कि बाइबल तर्कसंगत नहीं है किन्तु इसका अर्थ यह है हम छोटे बालकों के सदृश्य, आत्मिक बातों के प्रवेश द्वार पर ही हैं। यदि हमारा ज्ञान सिद्ध होता, तो हमें निश्चय ज्ञात होता कि हम बाइबल से पूर्णतः सहमत हैं। यह इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि नया जन्म पाया हुआ व्यक्ति जैसे-जैसे मसीह की समानता में बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे वह बाइबल की समझ और अनुरूपता में भी वृद्धि करता जाता है। किन्तु यदि हम अपनी मर्यादाओं को स्वीकार करने की अपेक्षा अपनी आलोचक शक्तियों को आधिपत्य दें, तो ठोकर खाएंगे। यदि हम अपना विश्वास अपने सीमित ज्ञान पर ही आधारित रखेंगे तो एक दिन जान लेंगे कि हमने बालू पर घर बनाया है।

हम क्यों विश्वास करते हैं कि बाइबल परमेश्वर का वचन है? सर्वप्रथम इसलिए कि मसीह ने स्वयं यह साक्षी दी। सुसमाचारों में हम पढ़ते हैं कि उसने पुराने नियम को अधिकार युक्त समझ कर सदैव उसके उदाहरण कहे। लूका अध्याय 4 में हम पढ़ते हैं कि अपनी सेवकाई के प्रारम्भ में ही उसने शैतान की परीक्षाओं का प्रभावशाली उत्तर, व्यवस्थाविवरण की पुस्तक से उद्धृत कर दिया। उसने अपनी सेवकाई इन शब्दों से आरम्भ की, "लिखा है" और ऐसा कहने से धर्मशास्त्र की प्रभुत्व शक्ति को दृढ़ किया। लूका 24 के अनुसार हम पढ़ते हैं कि पुनरुत्थान के पश्चात उसने सर्वप्रथम इम्माऊस के रास्ते पर दो जनों को धर्मशास्त्र में से समझाया। तदुपरान्त उसने ग्यारह चेलों को उपरौठी कोठरी में भी पवित्र शास्त्र का अर्थ समझाया। साढ़े तीन वर्ष की अपनी सेवकाई अवधि में उसने यहूदियों के प्रचलित पवित्र शास्त्र को परमेश्वर का प्रभुत्व सम्पन्न वचन मानकर बार-बार उद्धृत किया। स्मरण रखिए कि यहूदियों का पवित्र शास्त्र यही पुराना नियम है जो वर्तमान समय में हमारे पास है। चारों सुसमाचारों के संक्षिप्त लेखों में प्रभु यीशु ने पुराने नियम से कम से कम सत्तावन उदाहरण लिए, अथवा उसकी ओर संकेत किया। स्पष्ट है कि प्रभु यीशु ने अनेक अन्य उदाहरण लिए होंगे, जिनका उल्लेख पूर्वक नये नियम में नहीं है।

यह अत्यन्त स्पष्ट है कि मसीह ने पुराने नियम की प्रभुत्व शक्ति पर कभी सन्देश नहीं किया। वास्तव में यही एकमात्र अधिकार युक्त वचन लिखित रूप में था, जिसे उसने पृथ्वी पर स्वीकार किया। अपने युग के फरीसियों और सदूकियों को उत्तर देते हुए उसने सदैव धर्मशास्त्र से उदाहरण दिया। उसके तर्कों का आधार था– "लिखा है"। आधुनिक समय में अनेक प्रचारक धर्मशास्त्रियों, तत्वज्ञानियों, मनोवैज्ञानिकों– यहाँ तक कि साँसारिक लेखकों के वचनों को अधिकारयुक्त समझकर उद्धृत करते हैं। प्रभु यीशु ने दूसरे के विचारों को उद्धृत करने की कभी परवाह न की। उसने बाइबल को ही एकमात्र अधिकार माना। यदि हम उसी गवाही को ग्रहण करते हैं तो यह आवश्यक हो जाता है कि बाइबल को परमेश्वर का वचन भी स्वीकार करें। जो बाइबल को नहीं मानते व स्वयं मसीह की साक्षी को अस्वीकार करते हैं।

दूसरा, हम बाइबल को परमेश्वर का सिद्ध वचन इसलिए मानते हैं क्योंकि इसमें भी अधिकाँश भविष्यद्वाणियाँ पूर्ण हो चुकी हैं। बाइबल का एक तिहाई भाग भविष्यद्वाणी है। मसीह के इस पृथ्वी पर आने के कई शताब्दी पूर्व पुराने नियम में, इसके जन्म, मृत्यु तथा पुनरुत्थान की भविष्यद्वाणियाँ की गई थी। ये भविष्यद्वाणियाँ उसके आगमन से पूरी हुई। पुराने नियम के युग के प्रमुख राष्ट्रों

सम्बन्धी, विशेषकर इस्राएल सम्बन्धी भविष्यद्वाणियाँ पूर्ण हो चुकी हैं। हमारे ही युग में यहूदी अपनी मातृभूमि पलस्तीन में वापस लौटे हैं और उन्होंने यरूशलेम शहर पर आधिपत्य कर लिया है। तौभी इसकी पूर्व सूचना 2500 वर्षों पूर्व की गई थी।

बाइबल परमेश्वर की प्रेरणा से लिखी गई है। इसके अन्य प्रमाण इसकी 66 पुस्तकों की विशिष्ट एकता है। ये पुस्तकें 1600 वर्षों की अवधि में तीन भाषाओं में लिखी गई थी। इनके लेखक करीब चालीस विभिन्न व्यक्ति थे जिनकी शिक्षा का स्तर भी भिन्न था। वे विभिन्न समाज और संस्कृति के थे। लेखकों में राजा, गड़रिए, सैनिक, अगुवे, भविष्यद्वक्ता, फरीसी और मछुए भी थे। इतना होते हुए भी इस सम्पूर्ण पुस्तकालय में एक अपूर्व ऐक्य है और एक भी मौलिक विरोधाभास नहीं है। यहाँ वहाँ जो विरोधाभास दृष्टिगोचर होते हैं वे महत्वहीन हैं। उनका कारण मूलग्रन्थ के प्रेषण में गलत है। मूलभूत नैतिक विरोध एक भी नहीं है। बाइबल के कई ऐतिहासिक कथनों पर प्रश्न उठाया गया है, किन्तु आगे खोज से इन्हें सत्य प्रमाणित किया, गया है। इसके वैज्ञानिक कथन (यद्यपि थोड़े हैं, क्योंकि यह विज्ञान की पुस्तक नहीं है) इस संसार के प्रमाणित तथ्यों के अनुसार सभी सत्य हैं। यद्यपि ये कथन उस युग में लिखे गए जब मनुष्य का विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान दोषमुक्त था, तौभी उसमें ऐसे भ्रान्तियुक्त विचार नहीं हैं जिन पर समकालीन और उसके बाद के युग के लोग विश्वास करते थे। विज्ञान तो सतत अपने विचारों को बदलता रहा है तथा उसकी पुस्तकें पुनः लिखी जा रही हैं, किन्तु बाइबल को किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं।

बाइबल परमेश्वर की प्रेरणा में रची गई। इसका अन्य प्रमाण यह है कि शताब्दियों से यह शत्रु के प्रहारों पर विजयी होता आया है। बाइबल के समान संसार की किसी अन्य पुस्तक की इतनी सूक्ष्य आलोचना कभी नहीं की गई। तौभी मित्रों की आलोचनायें और शत्रुओं का विरोध सर्वदा असफल रहा है और बाइबल का सम्मान ज्यों का त्यों है। फ्राँसीसी नास्तिक वाल्टेयर ने एक बार कहा था कि सौ वर्षों के अन्दर एक भी बाइबल बची नहीं रहेगी। वे उसके "महान अन्तिम शब्द" थे। किन्तु इसके विपरीत उसकी मृत्यु के पश्चात् उसी के घर में बाइबल सोसाइटी ने अपना कार्यालय खोला। नास्तिक जन्म लेते और मर जाते हैं परन्तु बाइबल प्रबल होती जाती है। समस्त संसार में किसी अन्य पुस्तक को बाइबल के समान सम्मान नहीं प्राप्त है। आज भी यह ऐसी पुस्तक है जिसकी बिक्री संसार में सबसे अधिक होती है।

हम बाइबल को परमेश्वर का प्रेरित वचन जानकर विश्वास करते हैं। उसका एक प्रमाण यह है कि असंख्य जीवन इसके द्वारा परिवर्तित हुए हैं। कभी-कभी तो वास्तव में इसके पृष्ठों के एक पद ही से लोगों का जीवन बदला है। बाइबल के जिन अध्यायों की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था, उन्हीं के द्वारा परमेश्वर ने लोगों को उद्धार और जीवन परिवर्तन का अनुभव दिया। इस अपूर्व पुस्तक के किसी अध्याय को पढ़कर दुराचारी व्यक्ति एक ही रात्रि के अन्तर में परमेश्वर के भक्त बने हैं। ऐसा बाइबल के देशीभाषाओं में अनुवाद के द्वारा भी हुआ है, यद्यपि अनुवाद उच्च कोटि का नहीं था और उससे इतने अच्छे परिणाम की सम्भावना भी नहीं थी। वास्तव में परमेश्वर इस पुस्तक द्वारा बातें करता है और मानव जीवन में नैतिक परिवर्तन लाता है।

बाइबल के प्रेरित होने का छटवाँ प्रमाण उसका विपुल भण्डार है। शताब्दियों से ज्ञानी पुरुषों ने तीक्ष्ण बुद्धि के होते हुए भी इसके अध्ययन में अपना जीवन काल व्यतीत किया है। कभी अन्त न होने वाले खदान के सदृश्य इस पुस्तक का खजाना कभी समाप्त नहीं होता। व्यक्ति इसमें नित्य नवीन बातों की खोज कर सकता है। इसका सन्देश इतना सरल है कि एक बालक तक समझ सकता है। समय बीतता चला जाता है किन्तु यह वचन पुराना नहीं होता है। यह समय से सीमित नहीं। यदि बीसवीं शताब्दि का व्यक्ति इतना दीन हो कि इससे परामर्श ले, तो इस अद्‌भुत पुस्तक में उसकी सभी रचित होती तो ऐसा कदाचित सम्भव न होता। किन्तु परमेश्वर का प्रेरित वचन होने के कारण ही इसमें अनन्त परमेश्वर का विपुल ज्ञान है। इसलिए मानव सदैव आवश्यकतानुसार इससे सीख सकता है।

अन्त में, बाइबल के प्रेरित वचन होने का प्रमाण यह भी है कि जब हम परमेश्वर के समक्ष नम्र होकर इसे पढ़ते हैं, तो वह उसके द्वारा हमसे बातें करता है। उसके शब्दों को पढ़कर हमें अधिकाधिक निश्चय होता जाता है कि यह परमेश्वर की वाणी है। बाइबल के प्रमुख विषय त्रिएकत्व और प्रायश्चित जैसे सिद्धान्तों की खोज मानव कदापि नहीं कर सकता था। आत्मा की प्रेरणा से ही इन्हें जाना जा सकता है। सच तो यह है कि ये परमेश्वर-प्रदत्त हैं। बाइबल की प्रत्येक पुस्तक की विषय सूची और संन्देश में हमें एक अद्‌भुत ऐक्य, ढाँचा दिखाई देता है। यह बात विशेषकर प्रभु यीशु के विषय सत्य प्रमाणित होती है कि पूर्ण बाइबल में प्रभु यीशु का प्रतिरूप दिखाई देता है। "सम्पूर्ण बाइबल में मसीह" नामक एक प्राचीन टीके का शीर्षक उचित रीति से दर्शाता है कि यह बात सत्य है। बाइबल के छात्रों ने यह ज्ञात किया है कि जब मसीह उनके

अध्ययन का केन्द्र है तो पूर्ण बाइबल की विषय वस्तु उसी पर आधारित रह कर एक सुन्दर नमूना प्रस्तुत करती है।

हमारे युग में वृहत रीति से बाइबल की प्रभुत्व शक्ति पर प्रश्न उठाया जा रहा है। पौलुस ने कुरिन्थुस के विश्वासियों को चितौनी दी कि शैतान हव्वा के समान उनके भी मनों को भ्रष्ट कर सकता है (2 कुरि॰ 11:1-3)। शैतान जब हव्वा के पास आया तो उसने इस प्रश्न से आरम्भ किया, "क्या सच है कि परमेश्वर ने कहा?"। वह तब से लेकर आज तक वही प्राचीन प्रश्न मनुष्य से करता आ रहा है, "क्या यह सचमुच परमेश्वर का वचन है?" मनुष्यों को विश्वास से हटाने का उसका यह तरीका सर्वाधिक सफल रहा है। पवित्र आत्मा विशेष तौर से हमें यह चुनौती देता है, कि अन्तिम दिनों में इस संसार की भरमाने वाली आत्माओं के कारण अनेक लोग बहक जाएँगे (1 तीमु॰ 4:1)। यह कथन कि, "कितने लोग... विश्वास से बहक जाएंगे," मसीहियों को दर्शाता है अन्य जातियों को नहीं। प्रभु यीशु ने अन्तिम दिनों के विषय बोलते हुए (मत्ती 24:5, 11, 24) यह सम्भावना व्यक्त की, कि अनेक लोग भरमाए जाएंगे। 2 थिस्सलुनीकियों 2:3 के अनुसार पौलुस प्रेरित ने भी कहा कि प्रभु के पुनःआगमन से पूर्व "धर्म का त्याग" होगा। मसीह इसलिए भरमाए जाएंगे कि वे शैतान की चतुराई पूर्ण घोखे के चंगुल में फंस जाएंगे। से गम्भीर चितोनियाँ हैं। यदि इसकी अवहेलना कर हम सर्तक न रहें तो अवश्य घोखा खाएंगे।

कोई व्यक्ति आपको घोखा देने का प्रयत्न कैसे करता है? यदि वह आपको सौ रुपए का नोट देने के बदले जाली मुद्रा देना चाहे, तो यह प्रयत्न करेगा कि जाली नोट जितना सम्भव हो असली नोट के ही सदृश्य दिखे। इसी प्रकार ही वह आप पर चालाकी करेगा। शैतान उस व्यक्ति से कम धूर्त नहीं है। सन्देह रहित मसीह को घोखा देने का उसका सर्वशक्तिशाली साधन एक "मसीह" प्रचारक होगा। वह ऐसा प्रचारक होगा जो बाइबल को अपना आधार मानकर सन्देश अवश्य देता है, किन्तु जिसने उसकी प्रभुत्व शक्ति के समक्ष अपना मस्तक नहीं नवाया है उससे सर्तक रहिए! सूक्ष्म निरीक्षण से आपको ज्ञात होगा कि उसका सन्देश या तो बाइबल में पाया ही नहीं जाता, अथवा उसने बाइबल के सत्य को असंतुलित रूप से प्रस्तुत किया है।

इन सभी धोखों से सुरक्षा का उपाय स्वयं बाइबल ही है। यदि हम अपनी बाइबल से अच्छी तरह परिचित नहीं, तो अवश्य धोखे के शिकार हो जाएंगे। हम जब तक अपने विश्वास सम्बन्धी समस्त विषयों पर अन्तिम अधिकार बाइबल को न मानेंगे, तब तक यहाँ वहाँ बहकते रहेंगे और अन्त में हमारा विश्वास भी जाता रहेगा।

प्रभु यीशु ने फरीसियों एवं शास्त्रियों पर आरोप लगाया कि वे पुराने नियम को त्यागकर रीति-रिवाजों को स्थान देते हैं (मरकुस 7:5-13)। परमेश्वर के लिखित सन्देश को बहुत लम्बे समय से अस्वीकार करने का परिणाम यह हुआ, कि उन्होंने परमेश्वर के जीवित वचन को अपने मध्य न पहचाना अर्थात् उन्होंने प्रभु यीशु का भी तिरस्कार किया। किन्तु उन शास्त्रियों और फरीसियों के आत्मिक वंश के लोग हमारे युग में भी पाये जाते हैं। दु:खद बात यह है कि अनेक उनसे बहकाए जाते हैं। हमारे लिए सतर्क रहना कितना आवश्यक है!

भजन रचियता ने लिखा है कि परमेश्वर ने अपने सब नामों से बढ़कर अपने वचन को महत्व दिया है (भजन॰ 138:2)। उसको आमन्त्रित करना है। किन्तु उसका सम्मान करना, अमूल्य खजाने का प्रवेश द्वार पाना है।

परमेश्वर के वचन सुनने का महत्व

हमने मार्था को कहे गए प्रभु यीशु के वचनों से इस अध्याय का आरम्भ किया था। उन्हीं शब्दों में यह अर्थ छिपा है कि प्रतिदिन परमेश्वर के वचन के साथ समय व्यतीत करना कितना अत्यावश्यक है। अनेक बातें ऐसी हो सकती हैं जिनसे हमें सहायता मिले, अथवा जो उपयोगी सिद्ध हों, किन्तु सब बातों से बढ़कर यह एक बात निताँत जरूरी है। जिस प्रकार हमारी देह आक्सीजन बिना नहीं रह सकती, उसी प्रकार हम भी इसके बिना नहीं रह सकते। यह परमावश्यक है। हमारी आत्माओं की सर्वोपरि आवश्यकता है– हम प्रतिदिन प्रभु का वचन सुनने उसके कदमों पर बैठें।

किसी अन्य से बढ़कर प्रभु यीशु उन सभी तथ्यों से परिचित थे, जो मनुष्य के जीवन पर प्रभाव डालती हैं। उन समस्त परिस्थितियों का उसे ज्ञान था, जिनमें व्यक्ति स्वयं को पा सकता है। वह प्रत्येक मनुष्य पर आने वाले खतरों और शैतान की सभी धूर्तता से परिचित था। उसे ज्ञात था कि मनुष्य की आत्मिक वृद्धि के लिए क्या जरूरी है क्योंकि सिर्फ वही परस्पर महत्वपूर्ण और महत्वहीन बातों को जानता था। इन सभी को जानते हुए उसने कहा, "सब बातों से बढ़कर एक बात अवश्य है। मत्ती 4:4 में उसने इसी से मिलते-जुलते शब्दों का प्रयोग किया, "मनुष्य केवल रोटी ही से नहीं, परन्तु हर एक वचन से जो परमेश्वर के मुख से निकलता है जीवित रहेगा। यह व्यवस्थाविवरण 8:3 का उदाहरण है, जहाँ मन्ना की ओर संकेत है जिसे चालीस वर्षों तक इस्राएलियों ने जंगल में खाया था। इस्राएलियों को बताया गया था कि परमेश्वर उन्हें प्रतिदिन स्वर्ग से मन्ना इसीलिए देता हैं, कि वे उसी प्रकार परमेश्वर का वचन ग्रहण करें। उस जंगल की यात्रा करने के लिए यदि उन्हें सामर्थ प्राप्त करनी

थी, तो प्रतिदिन मन्ना की जरूरत थी। इसी प्रकार से यदि जीवन की हर परिस्थिति और परीक्षा का सामना करने की शक्ति प्राप्त करनी है, तो प्रतिदिन मन्ना की जरूरत थी। इसी प्रकार से यदि जीवन की हर परिस्थिति और परीक्षा का सामना करने की शक्ति प्राप्त करनी है, तो व्यक्ति को प्रतिदिन परमेश्वर का वचन ग्रहण करना है।

प्रभु यीशु की युक्तियाँ निरर्थक नहीं कही गयीं। उसका यह प्रयत्न था कि प्रतिदिन अपने वचन सुनने की आवश्यकता से शिष्यों को प्रभावित करे। यदि यह सत्य है तो जिस जीवन में परमेश्वर के लिखित वचन पर मनन करने का समय न दिया गया हो, वह जीवन व्यर्थ है। चाहे उस जीवन में अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त हों, तौभी वह महत्वहीन है।

लूका 17:26–30 में प्रभु यीशु के शब्द हम पढ़ते हैं कि अन्तिम दिन नूह और लूत के युग के समान होंगे। लोग खाते, पीते, लेन देन करने, अन्न उपजाते, गृह निर्माण इत्यादि कार्य करते होंगे। क्या आपने ध्यान दिया कि उक्त बातों में कोई पाप नहीं है? ये सब उचित कार्य हैं। फिर प्रभु यीशु ने उनका वर्णन पापी दिनों की स्थिति का चित्रण करते हुए क्यों किया? कारण यह कि उस युग के निवासी इन उचित कार्यों में इतने लीन थे कि परमेश्वर के लिए उन्होंने कोई समय नहीं दिया। शैतान सफल हुआ कि उनके जीवनों से परमेश्वर को सर्वदा दूर रखे। इसका फल यही हुआ और सदैव होगा कि उनमें नैतिक पतन और भ्रष्टाचार पनपा।

इस परिस्थिति से आधुनिक संसार की तुलना कीजिए। हमें भी व्यवहार और उसके परिणामों में समानता दृष्टिगोचर होगी। स्त्री–पुरुष अन्य कार्यों में इतने व्यस्त हैं कि परमेश्वर की सुनने को समय नहीं है। स्वयं अपना जीवन देखिए क्या यह सत्य नहीं विश्वासी तक के हृदय में संसार की आत्मा का प्रवेश हुआ है। यद्यपि विज्ञान ने समय की बचत करने वाले अनेक साधनों का अविष्कार किया, जो हमारे पूर्वजों को उपलब्ध न थे, तौभी मनुष्य समय की कमी का आभास करता है। जहाँ वे पैदल अथवा पशुओं की सवारी करते थे, वहाँ हम वर्तमान समय में मोटर, ट्रेन और हवाई जहाजों द्वारा यात्रा करते हैं। हमारे पूर्वज दैनिक कार्य–कलापों को करने में अधिक समय लगाते थे, जिन्हें आज हम उपकरणों एवं यन्त्रों द्वारा कर लेते हैं। तौभी उनमें से अनेक लोगों ने हमारी अपेक्षा परमेश्वर के साथ अधिक समय व्यतीत किया। क्यों? क्योंकि उन्होंने प्राथमिक महत्व की बातों को योग्य स्थान दिया। उन्होंने प्रथम बातों को प्रथम रखा।

यदि हम अपने प्रभु के लिए प्रभावशाली साक्षी बनना चाहते हैं, तो अत्यावश्यक है कि प्रतिदिन स्वर सुनते हुए उसके कदमों पर समय बिताएँ। आज अनेक व्यक्ति प्रचार करने के महत्वाकाँक्षी हैं। जिन्होंने कभी प्रतिदिन परमेश्वर की आवाज सुनने की आदत नहीं डाली है। दुखद परिणामस्वरूप "परमेश्वर का वचन" रुक गया है और मनुष्यों के शब्दों की अधिकता सुन पड़ती है। बहुत कम प्रचारकों के लिए ही यह कहा जा सकता है कि, "उनके पास यहोवा का वचन पहुँचा करता है" (2 राजा 3:12)। तौभी बाइबल में वर्णित परमेश्वर के प्रत्येक विश्वासी सेवक की यही पहचान थी। किसी व्यक्ति को परमेश्वर का वचन दूसरों को सुनाने का कोई अधिकार नहीं, जब तक उसने स्वयं परमेश्वर की बात सुनने में समय व्यतीत न किया हो। यही बात उन पर समान लागू होती है जो गुप्त साक्षी देते हैं अथवा खुले रूप से प्रचार करते हैं। मूसा के लिए लिखा है कि वह सर्वप्रथम परमेश्वर के निकट गया, "फिर बाहर आकर जो-जो आज्ञायें उसे मिलती उन्हें इस्राएलियों से कह देता था" (निर्गमन 34:34)। यहोशू से भी कहा गया कि उसका जीवन तभी सफल होगा, जब वह परमेश्वर के वचन पर प्रतिदिन मनन करेगा (यहोशू 1:8)। शमूएल इसका अत्युत्तम उदाहरण है, जिसने सर्वप्रथम परमेश्वर का स्वर सुनने की प्रतीक्षा की, तभी लोगों तक सन्देश पहुँचाया। परिणाम यह हुआ कि परमेश्वर ने उसकी एक बात भी निष्फल होने न दी (1 शमूएल 3:19)।

यशायाह 50:4 में मसीह की भविष्यद्वाणी करते हुए कहा गया है प्रति भोर को परमेश्वर उससे बातें करता था, क्योंकि उसके कान अपने पिता की आवाज सुनने को खुले हुए थे। परिणाम उसी पद में बताया गया है कि जितने यीशु के पास आए, उनकी आवश्यकतानुसार उसने वचन कहे। वह वास्तव में पिता का सिद्ध संदेशवाहक था। यदि परमेश्वर की आवाज़ प्रतिदिन सुनने की आवश्यकता स्वयं प्रभु यीशु को थी, तो हमारे लिए और कितनी अधिक न होगी। यहाँ असफल रहने पर हम कभी उन लोगों की पर्याप्त सेवा नहीं कर पायेंगे, जो जरूरत में हैं। हम जब "शिष्य के समान" सुनना सीख सकेंगे, तभी प्रभु हमको "सीखने वालों की जीभ" देगा। दुर्भाग्य! जिन्हें अब तक अन्यों को शिक्षा देने योग्य होना था, वे ही आत्मिक रूप से बालक हैं। कारण यही है कि उन्होंने इस "एक बात" की उपेक्षा की है।

प्रभु की सुनने का अर्थ है सिर्फ पढ़ लेना ही नहीं है। अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो रीति अनुसार ही बाइबल को पढ़ते हैं। प्रभु की सुनने का अर्थ उससे कहीं बढ़कर है। उसका अर्थ है परमेश्वर के वचन पर उस समय तक मनन करना,

जब तक हम उससे अपने लिए परमेश्वर का सन्देश ग्रहण न कर लें। सिर्फ इसी तरह हमारा मन भी नया हो सकता है और मसीह के मन की अनुरूपता में बदलते जा सकता है। परन्तु बाइबल पढ़ने वाले अधिकाँश लोगों ने इस प्रकार का मनन करना भी नहीं सीखा है।

मरियम के प्रभु यीशु के कदमों पर बैठने से हम कम से कम तीन आत्मिक सत्य सीख सकते हैं। बैठना-चलने, दौड़ने अथवा खड़े रहने के विपरीत मुख्यतः विश्राम की तस्वीर है। इससे हम सीखते हैं कि परमेश्वर का स्वर सुनने से पूर्व हमारे हृदयों को आराम और हमारे मनों को शान्त स्थिति में रहना चाहिए। यदि हम पापों का अंगीकार न किए हों तो उनसे हमारा हृदय व्याकुल रहेगा। उसी प्रकार इस संसार की चिन्ताओं और वैभव में लिप्त रहने से हमारा मन सदैव अशान्त रहेगा। अशान्त विवेक तथा चिन्ता एवं भयग्रस्त मन से, हम परमेश्वर की "दबी धीमी आवाज" सुनने की आशा कैसे रख सकते है? भजन॰ 46:10 में लिखा है कि परमेश्वर को जानने के लिए हमें उसके सम्मुख चुप हो जाना है।

किसी व्यक्ति के कदमों पर बैठना, नम्रता की भी तस्वीर है। मरियम कुर्सी पर अथवा यीशु के समान ऊँचाई पर नहीं बैठी थी, पर नीचे बैठी थी। परमेश्वर कभी न्याय के समय को छोड़, गर्वी व्यक्ति से बातें नहीं करता। परन्तु वह बालक सदृश्य दीन व्यक्ति से बातें करने तथा उसे अपना अनुग्रह प्रदान करने को सदैव तैयार है।

तीसरा, मरियम के सदृश्य बैठना अधीनता की तस्वीर है। ऐसा व्यवहार किसी शिष्य का उसके गुरु की उपस्थिति में होता है। परमेश्वर सिर्फ हमारी उत्सुकता को शान्त करने अथवा हमें सूचना देने के जिए हमसे बात नहीं करता। उसका वचन उसके हृदय की अभिलाषा को प्रगट करता है। वह इसलिए बातें करता है कि हम उसकी आज्ञा मानें। यूहन्ना 7:17 के अनुसार यीशु ने स्पष्ट कहा कि जब हम परमेश्वर की इच्छा पूर्ण करने के इच्छुक होंगे, तभी उसकी इच्छा हम पर व्यक्त होगी।

अनेक मसीही बाइबल से परमेश्वर की आवाज़ सुनने का प्रयत्न नहीं करते और महीनों तथा वर्षों में उसे पढ़े चले जाते हैं। इस पर भी वे सन्तुष्ट दिखाई देते हैं। मेरा आपसे प्रश्न है, "क्या आप परमेश्वर का स्वर प्रतिदिन सुनते हैं। यदि नहीं तो क्यों? वह उनसे बातें करता है जो सुनते हैं। आपके आत्मिक कानों के सुनने में कौन सी बाधा है? क्या आप उसके समक्ष शान्त नहीं रहते? क्या आपकी आत्मा दीन नहीं है? अथवा क्या आपने उसका कथन सुनकर भी

उल्लंघन किया है? या आपमें सुनने की इच्छा की कभी है? कोई भी कारण क्यों न हो, ईश्वर करे कि उसका उपचार तत्काल हमेशा के लिए हो। शमूएल की प्रार्थना कीजिए, "हे यहोवा, कह, क्योंकि तेरा दास सुन रहा है"। इसके उपरान्त अपनी बाइबल खोलिए और परमेश्वर का प्रकाश खोजिए, तब आप भी उसकी वाणी सुनेंगे।

परमेश्वर के वचन का प्रभाव

यह समझे बिना कि परमेश्वर के वचन का हमारे जीवनों पर क्या प्रभाव पड़ता है, प्रभु के कदमों पर बैठ उसका वचन सुनने के महत्व की सराहना कभी नही कर सकेंगे। यदि कोई व्यक्ति डॉक्टर की दवा ले किन्तु उसके प्रभाव पर विश्वास न करे, तो वह नियमित रूप से उसे लेने की परवाह भी नहीं करेगा। दवा पीने की उपेक्षा करने से अनुभव तक नहीं होगा कि उसकी कुछ हानि हुई है। किन्तु यदि वह दवा के अद्भुत इलाज अथवा अपने स्वास्थ्य के सुधार पर विश्वास करे तो सब कष्ट उठाकर भी वह उस दवा का सेवन नित्य करेगा।

इसी प्रकार हजारों मसीही ऐसे हैं जो परमेश्वर के वचन पर कभी दैनिक मनन नहीं करते, तौभी उन्हें कुछ खो देने का अनुभव नहीं होता। अपने जीवन की जाँच कीजिए। एक दिन भी दैनिक मनन के समय की उपेक्षा करके क्या आपको कुछ अनमोल वस्तु खो देने का पछतावा होता है? अथवा क्या आपको अनुभव होता है कि आपका अधिक नहीं बिगड़ा? परमेश्वर के अनेक लोग कभी मनन का समय नहीं देते, तौभी कैसे उस सम्बन्ध में सन्तुष्ट बने रहते हैं? कारण यही है कि उन्होंने कभी पूर्णतः नहीं समझा कि परमेश्वर का वचन उनके जीवन पर लाभप्रद प्रभाव डाल सकता है। हम देखेंगे कि यह दवा से बढ़कर है–यह भोजन है। उन्होंने यह अनुभूति नहीं की है कि परमेश्वर के वचन में परिवर्तन लाने वाली शक्ति है, तथा उसके अधीन न रहने वाले हानि उठा रहे हैं।

परमेश्वर के वचन का व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसे समझने के लिए हम बाइबल के नौ प्रतीकों पर ध्यान देंगे। इन प्रतीकों द्वारा बाइबल का महत्व समझाया गया है।

सर्वप्रथम हम भजन॰ 119:105 देखेंगे, जहाँ वचन को प्रकाश के तुल्य कहा गया है। "तेरा वचन मेरे पाँव के लिए दीपक, और तेरे मार्ग के लिए उजियाला है"। जब हम अन्धेरे में अनजाने पथ पर, चलते हैं, तो मार्ग देखने

के लिए प्रकाश का सहारा लेते हैं। यह उस बात का चित्रण है कि पाप के घोर अन्धकार से पूर्ण संसार में बाइबल हमारे लिए क्या कार्य करती है? यह हमें परमेश्वर का मार्ग दर्शाती है। बाइबल के बिना हम परमेश्वर के उद्धार का मार्ग किंचित नहीं जान सकते हैं।

मसीही को बाइबल सही सिद्धान्तों के मार्ग पर प्रकाश देती है। साथ ही वह मार्ग के किनारे गलत सिद्धान्तों के गड्ढों को दर्शाती है कि कोई उनमें न गिरे। उस ज्योति के बिना उसे कभी सत्य और असत्य का ज्ञान नहीं होगा। पवित्र आत्मा के बिना बिरीया के विश्वासियों को भला कहा, क्योंकि वे पौलुस की शिक्षाओं को उस समय तक ग्रहण नहीं करते थे जब तक स्वयं ही धर्मशास्त्र के अनुसार उनको नहीं जाँच लेते थे (प्रेरितों॰ 17:11)। तभी वे उसका सन्देश स्वीकार करते थे। (क्या प्रचारकों के प्रति उसके इसी व्यवहार के कारण, पौलुस ने गलत सिद्धान्तों को सुधारते हुए कोई पत्री बिरीया निवासियों को नहीं भेजी, जैसे उसने अनेक कलीसियाओं को भेजी थी?)। धर्मशास्त्र की उत्साहपूर्ण खोज करने वाले लोग सरलता से गलत सिद्धान्तों के चक्कर में नहीं फंसते। वे उस सत्य को जानते हैं जिसने उन्हें स्वतन्त्र किया है।

दुर्भाग्यवश, हम सहस्त्रों मसीहियों को देखते है जो या तो अत्यन्त आलसी हैं अथवा स्वयं बाइबल का अध्ययन करने के लिए उन्हें समय नहीं। धर्मशास्त्र से अनभिज्ञ रहकर वे सहज ही शैतान के बहकावे में आ जाते हैं। दु:खद बात यह है कि वर्तमान समय में उपदेशक को भाषण की प्रभावशीलता, शुद्ध व्याकरण तथा तार्किक प्रस्तुतीकरण के आधार पर परखा जाता है। इस बात को उतना महत्व नहीं दिया जाता कि वह परमेश्वर के वचन को सही समझाता है अथवा नहीं। स्मरण कीजिए कि उसके व्यक्तित्व, पद अथवा बोलने के वरदान से कहीं अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि वह ठीक सिद्धान्तों की शिक्षा दे। बोतल के अन्दर की दवा, बोतल की आकृति तथा रंग से अधिक महत्वपूर्ण है! क्या आप सत्य की ओर ध्यान देते हैं अथवा प्रभावशाली भाषण की ओर? यदि वास्तव में आप सत्य पर ध्यान देते हैं, तो पहले बिना बाइबल जाने आप सत्य को कैसे पहचानेंगे?

रोमन कैथोलिक व्यक्ति की एक कहानी है। उसके "प्रिस्ट" ने बताया था कि उसके सदृश्य सामान्य जन बाइबल को नहीं समझ सकते हैं। किन्तु इस व्यक्ति को एक नया नियम मिल गया और उसे पढ़कर उसको उद्धार का अनुभव हुआ। एक दिन जब उसके समक्ष नया नियम खुला हुआ था, तभी "प्रिस्ट" उसके घर आए। उन्होंने पूछा कि वह क्या पढ़ रहा था। उसने उत्तर

दिया कि वह बाइबल है। इस पर "प्रिस्ट" ने प्रतिरोध किया कि बाइबल जनसाधारण के लिए नहीं है अतः उसे नहीं पढ़ना चाहिए।

उस व्यक्ति ने भी प्रतिवाद किया, "इसके पढ़ने के परिणामस्वरूप मेरा नया जन्म हुआ है। 1 पतरस 2:2 में लिखा है कि शिशु के समान मैं आत्मिक दूध की लालसा करूँ ताकि बढ़ता जाऊँ।"

"प्रिस्ट" ने कहा, "अरे! परन्तु परमेश्वर ने हमें ग्वाला नियुक्त किया है कि तुम्हें यह दूध दें।"

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "अच्छा, महाशय, मैंने एक ग्वाला ठहराया था कि मुझे प्रतिदिन दूध दिया करे। मुझे शीघ्र ज्ञात हुआ कि वह दूध के साथ पानी मिलाकर दे रहा था। तब मैंने निश्चय किया कि उसके बदले गाय ही खरीद लूँ। अब मुझे शुद्ध दूध ही प्राप्त हो रहा है"।

भाइयों और बहिनों, हम जब परमेश्वर के वचन का अध्ययन स्वयं करेंगे, तभी शुद्ध दूध अर्थात् सही सिद्धान्त प्राप्त करेंगे। इस पापाच्छदित संसार में सिर्फ परमेश्वर का वचन ही ज्योति है, जिसके प्रकाश में हम चल सकते हैं। अतः यही मार्गदर्शन की समस्या की कुँजी है। परमेश्वर ने हमारे जीवनों के लिए मार्ग चुना है, किन्तु कई मसीहियों का अभियोग है कि वे इसे पाने में असमर्थ हैं। बहुधा उसका कारण यही रहा है कि उन्होंने परमेश्वर के वचन पर मनन करने में नियमित समय व्यतीत नहीं किया है। "तेरा वचन... मेरे मार्ग के लिए उजियाला है।" हमें मार्ग दर्शाने के लिए यह परमेश्वर का उपाय है।

दूसरा, याकूब 1:22, 23 में परमेश्वर के वचन की तुलना दर्पण से की गई है। हमें देखने के लिए दर्पण की आवश्यकता होती है कि हमारे मुख साफ है या गन्दे अथवा हमारे बाल बने या बिगड़े हैं। दर्पण के बिना हम नहीं बता सकते कि कैसे दिखते हैं। यदि याकूब ने इस पत्री को बीसवीं शताब्दि में लिखा होता तो परमेश्वर के वचन को उपमा देने के लिए सम्भवतः एक्स-रे शब्द काम में लाता। एक्स-रे चित्र द्वारा मुझे अपने आन्तरिक अंगों की स्थिति दिखती है जो अन्यथा नहीं दिखती। इसी प्रकार बाइबल भी दर्शाती है कि परमेश्वर के सम्मुख मेरे दिल की क्या दशा है। यह मुझे चितौनी देती तथा सुधारती है ताकि मैं सिद्ध और परमेश्वर की सेवा के योग्य बनूं (2 तीमु॰ 3:16, 17)। अनेक लोग आज अपनी आत्मिक स्थिति के विषय स्वयं को धोखा दे रहे हैं यह सोचकर कि सब कुछ ठीक है। क्यों? क्योंकि उन्होंने परमेश्वर के वचनरूपी एक्स-रे की आधीनता कभी स्वीकार नहीं की है।

सम्भव है कि विश्वासी होकर भी हम उन पापों से अनभिज्ञ नहीं जिनके लिए हम परमेश्वर के समक्ष दोषी हैं। बाइबल मनन के समय पवित्र आत्मा ने बहुधा मुझे मेरे पापों के विषय बताया है। कभी किसी स्वार्थपूर्ण अभिप्राय अथवा कार्य– जिसका मुझे तनिक आभास तक न था, पवित्र आत्मा ने मुझ पर प्रकट किया है। आत्मिक स्थिरता अथवा अवनति को यदि हमें दूर रखना है, तो परमेश्वर के वचन रूपी दर्पण द्वारा स्वयं की दैनिक जाँच करनी है। हमारे जीवनों में एक दिन भी ऐसा न जाने पाए, जब हम इस दर्पण में अपने दिल की जाँच न करें।

यिर्मयाह 23:29 में परमेश्वर के वचन की तुलना अग्नि से की गई है। बाइबल में आग को शुद्ध करने अथवा जलाने का प्रतीक माना गया है। सोना आग में डाले जाने से शुद्ध होता है किन्तु लकड़ी जल जाती है। इसी प्रकार परमेश्वर का वचन भी हमारे जीवनों में शुद्ध करने वाला प्रभाव डालता है। जो कुछ मसीह के सदृश्य नहीं, वह समाप्त हो जाता है। उपरोक्त कथन के अनुसार न सिर्फ यह हमें हमारे पाप दर्शाता है किन्तु हमें पवित्र भी करता है। परमेश्वर के कदमों पर प्रतिदिन समय बिताए बिना कोई व्यक्ति पवित्र होने की आशा नहीं कर सकता, क्योंकि इसी के द्वारा उसके जीवन की मलिनताएं घुल जाती हैं। यह भी भयानक सत्य है कि यह आग वचन के विरोध करने वाले को जला देती है (यूहन्ना 12:45)। परमेश्वर के वचन के प्रति हमारे व्यवहार से निश्चय होता है कि हम शुद्ध होएंगे अथवा नष्ट। उसके आधीन होने से हम शुद्ध हो जाएंगे। यदि उसका तिरस्कार करेंगे तो अवश्य उससे भस्स किए जाएंगे।

चौथा, यिर्मयाह 23 के इसी पद में परमेश्वर के वचन की तुलना हथौड़े से की गई है, जो पत्थर को फोड़ डालता है। यदि आप पर्वत पर रास्ता बनाना चाहें, तो आपको चट्टानों को तोड़ना होगा। आधुनिक समय में हम पत्थर फोड़ने के लिए डाइनामाइट का प्रयोग करते हैं, जबकि यिर्मयाह के युग में हथौड़े का प्रयोग किया जाता था। परमेश्वर का वचन उसका डाइनामाइट है जो हमारे मार्ग से बड़ी से बड़ी बाधाओं को हटा सकता है। हम सब अपने जीवनों में परीक्षाओं और समस्याओं का सामना करते हैं। ऐसे समय में हम बहुधा निराश और व्यथित हो जाते हैं। हमें सूझ नहीं पड़ता कि कहाँ जाएं, क्या करें। ऐसे समय में हम बाइबल में दी गई परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं को नहीं अपनाते, जिनके द्वारा हमारा बचाव हो सकता है। इनको अपनाने से डाइनामाइट की तरह हमारे मार्ग के अवरोध को उड़ा देते और हमें पर्वत पार विजेता के रूप में पहुँचाते। परमेश्वर के वचन को न जानकर हम कितनी हानि में रहे हैं।

पाँचवा, लूका 8:11 में परमेश्वर के वचन की तुलना बीज से की गई है, जो भूमि में बोया जाकर फल उत्पन्न करता है। 1 पतरस 1:23 में लिखा है कि यही बीज हमारे हृदय में नया जन्म उत्पन्न करता है। जब हम फलवन्त होंगे, तभी हमारे जीवनों द्वारा परमेश्वर की महिमा होगी। क्या आपके जीवन और सेवा में फल हैं जिनसे परमेश्वर की महिमा हो? क्या आपके जीवन में सर्वप्रथम प्रेम, आनन्द, मेल, कृपा, भलाई, विश्वास, नम्रता और संयम दिखाई देते हैं? (गल॰ 5:22, 23)। और तब, क्या आपकी सेवा में फल दिखाई देता है अर्थात् क्या आपकी सेवा द्वारा पापी, परमेश्वर की ओर फिरते और विश्वासी उसके अधिक निकट जाते हैं? यदि नहीं तो सम्भवतः कारण यही है कि आप उस वचन रूपी बीज को अपने हृदय में ग्रहण नहीं कर रहे हैं, जिसमें स्वतः जीवन है। भजन॰ 1:2, 3 में लिखा है कि जो व्यक्ति परमेश्वर के वचन पर सदैव मनन करता है वही फलवन्त वृक्ष की नाई होगा। वह अपने समस्त कार्यों में वृद्धि करेगा।

भजन॰ 119:103 परमेश्वर के वचन की तुलना भोजन से की गई है। यिर्मयाह 15:16 और 1 पतरस 2:2 में भी यही प्रतीक काम में लाया गया है। यहेजकेल नबी और यूहन्ना दोनों के लिए बाइबल में लिखा है, कि पुस्तक को "खा" (यहेज॰ 3:1-3; प्रका॰ 10:9, 10)। यहाँ ऐसे व्यक्तियों का चित्रण है जो परमेश्वर के वचन को खाते और पचा लेते है। भोजन से शक्ति प्राप्त होती है। हमारे शरीर उसके बिना नहीं बढ़ सकते। कम भोजन करने वाला व्यक्ति दुर्बल रहेगा। उसका स्वाथ्य कमजोर होगा। उसमें रोग प्रतिबन्धक शक्ति नहीं रहेंगी। यदि किसी ने उसकी देह पर आक्रमण किया तो वह अपनी सुरक्षा नहीं कर पाएगा। उसे मार गिराने के लिए धक्का देना ही पर्याप्त होगा। ठीक इसी प्रकार, परमेश्वर के वचन का तिरस्कार करने वाला व्यक्ति भी अविकसित होगा। अन्त में वह परीक्षाओं और शैतान के आक्रमणों का सामना करने में असमर्थ रहेगा। सिर्फ वे ही शक्तिशाली मसीही बन सकेंगे जो परमेश्वर के वचन पर नित्य ध्यान करते हैं (1 यूहन्ना 2:14)। सिर्फ बाइबल पढ़ लेने से ही आप शक्तिशाली नहीं बनेंगे। उस पर ध्यान करने से ही वचन आपके अन्तःस्थल को बेधते हुए प्रवेश करेगा। वह आपके हृदय में छिपा हुआ आपका ही भाग बन जाएगा (भजन॰ 119:11)। अय्यूब का कहना था कि वह परमेश्वर के मुख के वचन को दैनिक आहार से भी श्रेष्ठ मानता है (अय्यूब 23:12)। परमेश्वर की प्रतिदिन सुनने से उसने आत्मिक शक्ति का अपार धन संचित किया। निःसन्देह यही कारण था जिससे उसने शैतान के आक्रमणों पर जीत

पाई। अनेक कष्ट उठाने पर भी परमेश्वर पर उसका विश्वास कम नहीं हुआ। उसकी पत्नी विपत्ति पड़ते ही परमेश्वर को स्राप देने को तैयार हो गई। स्पष्ट है कि उसके मन में अपने पति के समान परमेश्वर के वचन के प्रति सम्मान की भावना नहीं थी। अय्यूब का जीवन उससे विपरीत था। उसके आदर्श से हम सीख सकते हैं कि यदि परमेश्वर का वचन प्रतिदिन ग्रहण करें, तो जीवन की प्रत्येक आपत्ति सहने के लिए अतुल्य सामर्थ प्राप्त हो सकती है।

सातवाँ, व्यवस्थाविवरण 32:2 में परमेश्वर के वचन की तुलना ओस से की गई है। बाइबल में ओस परमेश्वर की आशीष को दर्शाता है। जब परमेश्वर ने इस्राएल को आशीष दी, तो उसने वर्षा भेजी और ओस गिरने दी। जब इस्राएल ने पाप किया तो उसने बारिश को रोके रखा, जैसा हम 1 राजा॰ 17 में पढ़ते हैं। अतः इस प्रतीक से यह शिक्षा मिलती है कि परमेश्वर की आशीष उसके वचन द्वारा उन सब पर आती है जो उसे ग्रहण करते तथा तदानुसार चलते हैं। नीतिवचन 10:22 के अनुसार इस आशीष द्वारा धन कितना उत्साहवर्धक है!

सुसमाचारों में इसके अनेक उदाहरण हैं। एक दिन यीशु के शिष्यों को 5000 व्यक्तियों की भोजन व्यवस्था करनी पड़ी। उनके पास सिर्फ एक लड़के की दी हुई पाँच रोटियाँ और दो मछलियाँ थीं। उन्होंने विरोधपूर्वक कहा कि उतना अपर्याप्त है और वास्तव में वैसा ही था: किन्तु तब प्रभु ने उस भोजन पर आशीष दी। परिणामस्वरूप समस्त लोग खाकर सन्तुष्ट हुए और काफी भोजन बचा रहा। एक अन्य उदाहरण शिष्यों का है जिन्होंने रात्रि भर परिश्रम करके भी कुछ मछली नहीं पकड़ी। प्रातः समय यीशु ने उनसे बातें की। उन्होंने उसकी आज्ञा मानी और जाल कुछ ही क्षणों में मछलियों से भर गया। ये इस तथ्य के दो उदाहरण हैं कि प्रभु की आशीष द्वारा से सचमुच धन प्राप्त होता है। उसके वचन से प्राप्त आशीष द्वारा हमारी घटियाँ पूरी हो जाती हैं। सम्भवतः आपमें दूसरों के समान भाषण करने, संगीत सुनाने अथवा प्रार्थना करने का वरदान न हो। किन्तु जब स्वर्गीय शबनम को बूँदें आपके जीवन पर टपकेंगी, तो अयोग्यताओं के होते हुए भी परमेश्वर आपको सहस्रों के जीवन के लिए आशीषमय बना सकता है। अतः परमेश्वर के वचन पर मनन के लिए समय दीजिए। जब तक आपकी आत्मा पर ओस न गिरे तब तक उसकी उपस्थिति से भागने की चेष्टा न कीजिए।

परन्तु ओस आशीष से कहीं बढ़कर है। यह ताजगी का द्योतक है। बाइबल से हमें यह भी प्राप्त होता है अर्थात् पुनर्जाग्रति। प्रभु का स्वर प्रतिदिन सुनते रहने से हमारे मसीही जीवन में नित्य नवीनता रहती हैं पतन गर्त से हमारी सुरक्षा

होती है तथा हम स्थिर जीवन से बचे रहते हैं। रोटी से किसी के मुँह में पानी नहीं भर आता। उसी प्रकार अनेक विश्वासियों के स्थिर जीवन से कोई आशा नहीं की जा सकती कि वे किसी को प्रभु के निकट लाएंगे। क्या आप का मसीही जीवन प्रतिदिन नवीन रहता है? यह तभी हो सकता है जब तक आप रोज ओस के नीचे से स्वर्गीय मन्ना का स्वाद चखेंगे (निर्गमन 16:13-15; पद 20 से तुलना कीजिए)।

परमेश्वर के वचन की तुलना भजन॰ 119:162 के अनुसार धन तथा धर्मशास्त्र के अन्य अध्यायों अनुसार स्वर्ग से भी की गई है। पैसे से आप वास्तव में धनी नहीं बन सकते। आप योग्यता प्राप्त कर उच्च पद को पहुँच सकते हैं तथा बहुत रुपया कमा सकते हैं किन्तु यह धन तो क्षणिक होगा। सिर्फ परमेश्वर का वचन ही वास्तव में आपको धनाड्य बना सकता है।

धनी व्यक्ति को किसी बात की कमी नहीं होती। उसके पास व्यय के लिए भी पर्याप्त होता है। दूसरी ओर दरिद्र व्यक्ति स्वयं से अधिक सौभाग्यशाली व्यक्तियों से भिक्षा मांगते भटकता है। परमेश्वर का वचन आपको इतना धनी बना सकता है कि आपको कमी का अनुभव कभी नहीं होगा। इससे न सिर्फ आपकी स्वयं की आवश्यकताएँ पूर्ण होंगी किन्तु दूसरों की जरूरतों को पूरी करने के लिए भी पर्याप्त होगा। जीवन की एक भी परिस्थिति ऐसी नहीं, जिसका आप सामना करें, तथा जिसका हल बाइबल में कहीं-न-कहीं न लिखा हो। उसका उत्तर बाइबल में वर्णित चरित्रों में होगा जिसकी समस्या आपकी सी होगी अथवा उसका हल बाइबल की किसी शिक्षा में मिलेगा। यदि आप अपनी बाइबल से परिचित हों तो जानेंगे कि संकट में पवित्र आत्मा उपयुक्त अध्यायों का स्मरण दिलाएगा और उन्हीं में से आपको उत्तर देगा।

मैंने स्वयं के जीवन में एक नहीं अनेक बार इसे सत्य पाया है। जब परमेश्वर ने मुझे अपनी सेवा की बुलाहट दी, तब मैंने भारतीय नौ सेना के अपने कार्य से पदत्याग का प्रार्थना पत्र लिख भेजा। नौ सैनिक विभाग से तुरन्त उत्तर आया कि मेरा त्यागपत्र अस्वीकृत कर दिया गया है। मुझे सूझ न पड़ा कि आगे क्या करूँ। प्रभु ने एकदम मुझे उस घटना का स्मरण दिलाया जब मूसा ने फिरौन के पास जाकर परमेश्वर की सेवार्थ इस्राएलियों के छुटकारे की याचना की थी। फिरौन ने प्रार्थना ठुकरा दी थी किन्तु मूसा यहीं नहीं रुक गया। वह फिरौन के पास उस समय तक जाता रहा जब तक इस्राएलियों का छुटकारा नहीं हो गया। यहाँ मेरी समस्या का उत्तर था! मैंने पुनः पदत्याग का प्रार्थना पत्र भेजा, पुनः वही उत्तर आया। मैंने पहले जैसे कारण देते हुए फिर तीसरी बार

प्रार्थना पत्र भेजा। कई मास तक कोई जवाब नहीं आया—पर अन्त में मुझे छुट्टी मिली! यह एक उदाहरण है कि प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने के लिए परमेश्वर हमें कितना धनी बना सकता है! वह हमें सिर्फ स्वयं के जीवन में ही धनी नहीं बना सकता किन्तु दूसरों के जीवन के लिए भी, जो आवश्यकता की घड़ी में हम तक पहुँचते हैं।

अन्त में इफिसियों 6:17 में परमेश्वर के वचन की तुलना आत्मा की तलवार से की गई है। मसीही जीवन सतत युद्ध है। शत्रु अत्यन्त चालाक है। उसके आक्रमण का तरीका यह है कि परमेश्वर के प्रेम उसके न्याय और स्वयं परमेश्वर के सम्बन्ध में ही संदेह उत्पन्न करे। इस तलवार से शत्रु का प्रत्येक प्रयत्न विफल हो सकता है। शर्त यह है कि हम उसका प्रयोग जानें। शैतान के सर्वशक्तिशाली हथियारों में से निराशा भी एक है। इसके द्वारा उसने कई सामर्थी व्यक्तियों को मार गिराया है। मूसा, एलिय्याह और योना सभी इसके शिकार हुए, तौभी उन्होंने परमेश्वर का वचन सुन निराशा पर विजय पाई। सम्भव है कि मैं और आप किसी अन्य कार्य में ध्यान बटाकर अपनी निराशा पर अस्थायी पर विजय पा लें, किन्तु सिर्फ परमेश्वर के वचन द्वारा ही इस पर पूर्णतः विजयी हो सकते हैं। इसी तलवार के प्रयोग से ही प्रभु यीशु ने जंगल में शैतान पर जीत पाई।

नौसेना में मुझे एक घटना का स्मरण आता है। एक मास से अधिक हमारा जहाज एक छोटे बन्दरगाह पर टिका था। हम काम के लिए प्रतिदिन समुद्र तक जाया करते थे। काम का बोझ भारी था और मसीही संगति का समय तनिक नहीं मिला था। इन्हीं कारणों से एक दिन मेरा मन गहरी निराश में डूबा हुआ था। स्थिति बिगड़ गई थी। जहाज के कमरे में बैठे हुए अकस्मात् यह पद मेरे मन में आया: "यहोवा तुमको पूँछ नहीं, किन्तु सिर ही ठहराएगा, और तू नीचे नहीं, परन्तु ऊपर ही रहेगा7 (व्यवस्थाविवरण 28:13)। मैंने एकदम जाना कि परमेश्वर ने हर परिस्थिति में मुझे "ऊपर ही" रखने की प्रतिज्ञा की है। तत्क्षण स्वर्गीय आनन्द से मेरा हृदय पुनः ओत प्रोत हो गया। मेरे होठों में संगीत समा गया। शत्रु के प्रत्येक प्रहार पर विजय प्राप्त करने की ऐसी ही शक्ति परमेश्वर के वचन में है।

उक्त नौ प्रतीकों से हमें थोड़ी जानकारी प्राप्त होती है कि परमेश्वर का वचन व्यक्ति के जीवन पर क्या प्रभाव डाल सकता है। क्या आपने प्रभु यीशु के इस कथन को समझना आरम्भ किया है कि विश्वासी के जीवन में यही एक अत्यावश्यक बात है। क्या आप इस कथन को गम्भीरतापूर्वक लेंगे? यदि

हाँ तो प्रण कीजिए कि अन्य आवश्यकताओं के हानि पर भी आप प्रतिदिन परमेश्वर के वचन पर मनन के समय को प्राथमिकता देंगे।

बाइबल में उन दिनों का विवरण है जब इस संसार में परमेश्वर के वचन का दुर्भिक्ष पड़ेगा (आमोस 8:11, 12)। उन दिनों अनेक बहकाने वाले होंगे जैसा हमने 1 तीमु॰ 4:1-2 में पढ़ा। इससे स्पष्ट है सत्य का अकाल पड़ेगा। मेरा विश्वास है कि वे दिन एकदम निकट हैं और जैसे समय बीतता जाएगा परमेश्वर के वचन का अकाल बढ़ता जाएगा। मिस्र में यूसुफ ने बहुताएत के वर्षों में अन्न एकत्र किया। अतः दुर्भिक्ष के समय, जिसकी पूर्व सूचना परमेश्वर ने दी थी, कोई घटी नहीं थी। यदि हम बुद्धिमान हैं, तो अपने हृदयों में आज भी परमेश्वर के वचन का ऐसा भण्डार रख सकते हैं, जो मौके पर काम आए। काश परमेश्वर हम सबके हृदयों पर इस संदेश की गहरी छाप लगाए।

"क्या ही धन्य है वह मनुष्य जो मेरी सुनता, वरन मेरा डेवढ़ी पर प्रतिदिन खड़ा रहता है।" (नीतिवचन 8:34)।

3

एक वर मैंने यहोवा से माँगा है

यहोवा परमेश्वर मेरी ज्योति और मेरा उद्धार है;
मैं किस से डरूँ?
यहोवा मेरे जीवन का दृढ़ गढ़ ठहरा है,
मैं किसका भय करूँ?
जब कुकर्मियों ने
जो मुझे सताते और मुझी से बैर रखते थे,
मुझे खा डालने के लिए मुझ पर चढ़ाई की,
तब वे ही ठोकर खाकर गिर पड़े॥

चाहे सेना भी मेरी विरुद्ध छावनी डाले,
तो भी मैं न डरूँगा;
चाहे मेरे विरुद्ध लड़ाई ठन जाए,
उस दशा में भी मैं हियाव बान्धे निश्चित रहूँगा॥

एक वर मैंने यहोवा से माँगा है,
उसी के यत्न में लगा रहूँगा;
कि मैं जीवन भर यहोवा के भवन में रहने पाऊँ,
जिससे यहोवा की मनोहरता पर दृष्टि लगाए रहूँ,
और उसके मन्दिर में ध्यान किया करूँ॥ *(भजन॰ 27:1–4)*

यह सुन्दर भजन व्यक्ति की रचना है जिसने इस्राएल का सिंहासन प्राप्त किया था। तौभी पद 4 के अनुसार दाऊद का कथन है कि उसने समस्त संसार की वस्तुओं में सिर्फ एक ही वर परमेश्वर से माँगा है। उस युग में राजाओं की

मुख्यतः दो आकाक्षाएँ होती थीं: एक अपने देश का विस्तार करना और दूसरा धन संचय करना। अब तब इस्राएल एक बृहत राष्ट्र नहीं बना था, न ही दाऊद स्वयं एक अत्यन्त धनी सम्राट था। किन्तु दाऊद ने प्रार्थना कर इन दोनों क्षेत्रों में बढ़ती की माँग नहीं की। उसका कथन है कि चाहे वह चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ हो, तौभी उसकी प्रमुख इच्छा रहेगी कि प्रभु के भवन में रहे और उसकी मनोहरता देंखे (3,4)। उसने यह भी लिखा है कि वह जीवन भर इसी प्रयत्न में लगा रहेगा। यह उस प्रेमी की तस्वीर है जो अपनी प्रेमिका के साथ बैठ उसके सौंदर्य पर ध्यान देता रहे और उससे बढ़कर संसार में कुछ न चाहे। उनके मध्यस्थ प्रेम इतना गाढ़ा है कि वार्तालाप की भी आवश्यकता नहीं। जिन्होंने ऐसे प्रेम का अनुभव किया है वे ही जानेंगे कि यह कितना सत्य चित्रण है।

मेरा विश्वास है कि एक कारण यही है जिसके लिए बाइबल में दाऊद की साक्षी दी गई कि वह परमेश्वर के मन के अनुसार व्यक्ति है। वह सिद्ध व्यक्ति नहीं था। अपने जीवन में एक बार उसने बहुत बुरा पाप किया—उसने व्यभिचार तथा हत्या दोनों की। तौभी जब उसने पश्चाताप किया तब परमेश्वर ने उसे क्षमा दी। उसने उसे शुद्ध किया और गड्डे से निकालकर ऊँचा किया। इतना होते हुए भी परमेश्वर ने कहा कि मुझे दाऊद मेरे मन के अनुसार मिल गया है (प्रेरितों॰ 13:22)। एक कारण यह था जैसे हमने पहले कहा कि दाऊद के हृदय में परमेश्वर के लिए अपार प्रेम था। 1 शमूएल 16:7 में परमेश्वर ने स्पष्ट कहा है कि वह व्यक्ति के हृदय को देखता है। अतः यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि ये शब्द वास्तव में दाऊद के लिए उच्चारित हुए। मसीही जीवन की अन्य प्राथमिकताओं में से एक सही है— परमेश्वर के लिए प्रेम।

अतः हमारा विषय प्रेम है। हम पुनः तीन शीर्षकों के अन्तर्गत इस पर ध्यान देंगे। प्रथम, हम ध्यान देंगे कि मनुष्य के साथ परमेश्वर के समस्त कार्यो का आधार-प्रेम है। द्वितीय, हमारे समर्पण के प्रेरणा प्रेम होना चाहिए। तृतीय, हमारे आत्मिक जीवन की वास्तविक जांच प्रेम है।

प्रेम—मनुष्य के साथ परमेश्वर के सब व्यवहारों का आधार

प्रथम अध्याय में हमने अपने विश्वास की नेव पर ध्यान दिया था। यहाँ भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि परमेश्वर के प्रेम के लिए हमें एक ठोस आधार चाहिए। यह आधार सिवाय उसके प्रेम को छोड़ और कुछ नहीं हो सकता। यह प्रेम कभी टलता नहीं। "हम इसलिए प्रेम करते हैं, कि पहले उसने हमसे प्रेम किया" (1 यूहन्ना 4:19)। अनेक मसीही अपने जीवन में आगे चलकर कठिनाई

अनुभव करते हैं क्योंकि मूलतः उन्होंने इस बात को स्पष्ट नहीं समझा था। मसीही जीवन के आरम्भ में इसकी दृढ़ नेव डाल कर ही हम आगे बढ़ सकते हैं।

जब परमेश्वर ने इस सृष्टि की रचना की, और यहाँ मानव को रखा, तो उसका अभिप्राय था कि यहाँ प्रेमपूर्ण वातावरण रहे। उसने चाहा था कि मनुष्य दासता के कारण नहीं किन्तु प्रेम के कारण उसकी आज्ञा माने। चूंकि प्रेम का कोई वास्तविक अर्थ ही नहीं हो सकता, जब तक चुनाव की स्वतन्त्रता उपलब्ध न हो, परमेश्वर ने आदम को इच्छा शक्ति दी। आदम इस इच्छा शक्ति के कारण चुनाव के लिए स्वतन्त्र था। परमेश्वर को ज्ञात था कि मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति का दुरुपयोग कर उसकी अवहेलना कर सकता है। आपत्तिजनक होने पर भी परमेश्वर ने मनुष्य के साथ स्वतन्त्र सम्बन्ध बनाए रखना स्वीकार किया। उसने कभी मानव से दासतापूर्ण सेवा की आकांक्षा नहीं की। न ही उस समय और न आज वह मनुष्य से यह चाहता है।

मनुष्य के साथ परमेश्वर के समस्त सम्बन्धों में, बाइबल में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक, हम इसी प्रेम के सिद्धान्त की प्रभुता पाते है। इस सम्बन्ध में हम बाइबल के उन दो हवालों की ओर ध्यान देंगे जहाँ प्रथम बार "प्रेम शब्द का प्रयोग हुआ है। किसी भी विषय का बाइबल में सर्वप्रथम वर्णन उस विषय के अध्ययन में सदैव अत्यन्त सहायक रहा है। अतः हम इन दोनों अध्यायों से इस शब्द के स्पष्ट व्याख्या की आशा रखते हैं।

उत्पत्ति 22:2 में प्रेम शब्द का प्रथम बार प्रयोग हुआ है, लिखा है कि इब्राहीम अपने एकलौते पुत्र इसहाक से प्रेम करता था। इसके उपरान्त वेदी पर इसहाक के बलिदान का विवरण है। यह स्पष्टतः कलवरी का चित्रण है जहाँ परमेश्वर पिता ने अपने एकमात्र पुत्र को हमारे अपराधों के लिए बलिदान कर दिया। पद 2 में प्रयुक्त प्रेम शब्द, परमेश्वर पिता के मसीह के लिए प्रेम का चित्रण है। बाइबल में "प्रेम" शब्द का दूसरा विवरण उत्पत्ति 24:67 में हैं, जहाँ इसहाक का रिबका के प्रति प्रेम वर्णित है। यह पत्नी के लिए, पति का प्रेम है। जैसे आगे इस अध्याय में सुन्दर वर्णन है, यह कलीसिया के प्रति मसीह के प्रेम की स्पष्ट तस्वीर है। नये नियम में यूहन्ना 15:9 के अनुसार प्रभु ने इन दोनों विचारों को एक करते हुए कहा, "जैसा पिता ने मुझसे प्रेम रखा, उत्पत्ति 22:2 के अनुसार पिता का पुत्र के प्रति प्रेम की तस्वीर), वैसे ही मैंने तुमसे प्रेम रखा" (यह मसीह का पापियों के प्रति प्रेम है। यह उत्पत्ति 24:67 में वर्णित दूल्हा का दुल्हन के प्रति प्रेम के सदृश्य है)। इस प्रकार पुराने नियम के प्रतीक में भी मनुष्य के प्रति परमेश्वर के अपार प्रेम की झलक है।

हम उत्पत्ति 24 में दर्शाए इसहाक और रिबका के मध्य सम्बन्ध में परमेश्वर के महान प्रेम की कुछ विशेषताओं पर ध्यान देंगे। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि जब परमेश्वर हम पर प्रेम प्रगट करना चाहता है कि वह हमसे कितना अधिक प्रेम रखता है, तो पति–पत्नी के मध्य सम्बन्ध का उदाहरण देता है। पति–पत्नी के मध्य सम्बन्ध संसार का ऐसा सम्बन्ध है जो सबसे अधिक गाढ़ा है। यद्यपि इसकी तुलना बहुत आगे तक करना मूर्खतापूर्ण होगा तौभी यह सम्बन्ध गहरे आत्मिय सम्बन्ध की ओर संकेत करता है। ऐसा सम्बन्ध परमेश्वर हममें से प्रत्येक के साथ रखना चाहता है। उसकी अभिलाषा है कि हम भी उसके साथ ऐसा ही सम्बन्ध रखें। इफिसियों 5:21–33 में भी इसी उदाहरण की पुष्टि की गई है। उत्पत्ति 24 में वर्णित कथा एक दृष्टान्त स्वरूप है कि किस प्रकार परमेश्वर मनुष्य के साथ ऐसे सम्बन्ध बनाए रखने की खोज करता है। इब्राहीम परमेश्वर पिता का प्रतीक है। इब्राहीम का दास पवित्र आत्मा का और इसहाक परमेश्वर का पुत्र है। रिबका का स्थान सुदूर देश के परदेशी का सा है जिसका छुटकारा नहीं हुआ और जिसे पवित्र आत्मा मसीह के लिए जीतने की चेष्टा करता है। इब्राहीम के सेवक के व्यवहार (जो अपने कार्य में इब्राहीम और इसहाक दोनों का प्रतिनिधित्व कर रहा था) और इसहाक के रिबका के प्रति व्यवहार में, हम अपने लिए मसीह के प्रेम की कुछ विशेषताएँ देख सकते हैं।

सर्वप्रथम, पद 22 और 53 से हमें ज्ञात होता है कि इब्राहीम के सेवक ने अपने मालिक के धन में से रिबका को भेंट दी। इससे हमें बोध आता है कि परमेश्वर का हृदय कैसा है। जब वह हमारे पास आता है, तब वह मांगते नहीं किन्तु देते हुए आता है। एक सच्चा पति अपनी समस्त वस्तुओं में पत्नी को भी भागी बनाना चाहता है, उसी प्रकार परमेश्वर की भी इच्छा है कि हम उसके सभी वस्तुओं के भागी हों हममें से बहुतों की यह विचारधारा है कि परमेश्वर को अपना पूर्ण सर्मपण करने से परमेश्वर हमसे बहुत कुछ माँगेगा जिससे हमारा जीवन दु:खदायी हो जाएगा। सम्भवत: हम इन्हीं शब्दों में न कहें, तौभी यही कारण है जिससे हम परमेश्वर को अपना सम्पूर्ण समर्पण करने से संकोच करते हैं। प्रभु यीशु ने हमें स्पष्ट बताया कि वह नहीं किन्तु शैतान ही वास्तविक चोर है जो हमारी वस्तुओं को लेने के लिए आता है (यूहन्ना 10:10)। किन्तु कितने थोड़े हैं जो इस पर विश्वास करते हैं। यदि सचमुच यह विचार रखते कि प्रभु यीशु हमें अपना सर्वस्य देने के लिए आया, तो अपना जीवन समर्पण करने में कदाचित संकोच नहीं करते।

एक पास्टर की कहानी बताई जाती है जो एक दरिद्र वृद्ध महिला के घर भेंट लेकर गया, जिससे उसका मकान का किराया चुकाया जा सके। उसके घर

जाकर उसने द्वार खटखटाया। वह रुका रहा और फिर खटखटाया। कोई उत्तर न मिला इसलिए कुछ समय पश्चात् वह चला गया। कुछ दिनों उपरान्त सड़क पर उसकी भेंट उस महिला से हुई। उसने कहा, "मैं उस दिन तुम्हारे घर एक भेंट लेकर आया था। दरवाजा बन्द था और कोई उत्तर नहीं मिला।" वृद्ध महिला ने कहा, "अरे! मुझे दुख है। मैं भीतर थी, परन्तु यह सोचकर कि मकान मालिक किराया मांगने आया है, मैंने दरवाजा नहीं खोला।" भाइयों और बहनों, प्रभु यीशु किराया वसूल करने नहीं आया है! वह हमें अपना सर्वस्य देने आया है। वह हमें कल्पनातीत धन देना चाहता है। उसके लिए द्वार बन्द रखना कितनी मूढ़ता है! अपना सम्पूर्ण जीवन उसे समर्पित न करना निरी मूर्खता है।

पुनः इब्राहीम के सेवक पर ध्यान दीजिए। कहानी का एक भाग यह भी है—रिबका इसहाक के लिए परमेश्वर का चुनाव है, यह जानते हुए भी उसने उसे अपने साथ चलने को बाध्य किया। उसने रिबका की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का सम्मान किया। उसी की स्वीकृति पाकर वह उसे ले जाने को तैयार हुआ (पद 54-59)। मसीह के हमारे प्रति प्रेम की यह भी एक विशेषता है, जैसा हमने इस अध्याय के प्रारम्भ ही में संक्षिप्त रूप से देखा। परमेश्वर मानव की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का सम्मान करता है। परमेश्वर के प्रेम में कोई दबाव नहीं रहता। वह आपको किसी भी कार्य के लिए कभी बाध्य नहीं करेगा। हाँ—संसार के व्यक्ति और मसीही अगुवे भी अपनी इच्छा के विपरीत कई कार्यों के लिए आप पर दबाव डाल सकते हैं—परन्तु परमेश्वर कभी दबाव नहीं डालेगा। (जो व्यक्ति परमेश्वर की इच्छा चाहता है, वह भी ऐसा ही करेगा)। बाइबल पढ़ने, प्रार्थना करने अथवा गवाही देने के लिए प्रभु कभी आपको बाध्य नहीं करेगा। परमेश्वर कभी दबाव नहीं डालता कि कोई पापी उसकी ओर फिरे, न ही वह आज्ञा पालन के लिए किसी विश्वासी को बाध्य करेगा। मिलाप वाले तम्बू के विषय मूसा को आदेश देते हुए परमेश्वर ने कहा कि भेंट उन्हीं से ली जाए, जो सहर्ष देते हों (निर्गमन 25:2)। यही सिद्धान्त नये नियम में (2 कुरि॰ 9:7)। वस्तुतः पूर्ण बाइबल में पाया जाता है। परमेश्वर अवश्य आज्ञा पालन का आदेश देता है, परन्तु उसकी पूर्ति के लिए किसी से हठ नहीं करता। वह सदैव उस स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का सम्मान करेगा, जिसे उसने स्वयं मनुष्य को दिया है। फिर क्या जरूरत कि मैं और आप उसके इस प्रकार के प्रेम से डरें?

जब रिबका स्वयं सहायक के घर के निकट पहुँची, तब इसहाक मैदान में प्रार्थना करने गया हुआ था (पद 63) इब्राहीम के सेवक ने रिबका को लाने के लिए एक लम्बी यात्रा की थी उसके एक ओर का मार्ग करीब 600 मील

लम्बा था। इस यात्रा में उसे अवश्य करीब 2 महीने लगे होंगे। जैसे-जैसे उसके लौटने का समय निकट आता होगा, इसहाक भी उत्सुकतापूर्वक अपनी दुल्हन की प्रतीक्षा करता रहा होगा। प्रतिदिन वह मैदान में जाकर प्रार्थना करता रहा होगा कि वह शीघ्र आए। तब एक दिन उसने ऊँटों को आते देखा। उसका हृदय कितना प्रसन्न हुआ होगा! ओह परन्तु यह तो उस उत्सुकता की अत्यन्त अस्पष्ट तस्वीर है, जिससे हमारा प्रिय प्रभु स्वर्ग में अभी हमारी प्रतीक्षा करता है। यह एक अद्‌भुत सत्य है कि यद्यपि हम इतने पापी और मलिन हैं तथा बहुत बार विद्रोही भी हो जाते हैं, तौभी हमारे प्रभु का प्रेम बहुत बड़ा है। वह स्वर्ग में उत्सुकता-पूर्वक हमारी प्रतीक्षा करता है। सम्भव है हमारे मनों में भी उससे भेंट की लालसा हो, किन्तु हमें ग्रहण करने तथा अपनी महिमा में सहभागी बनाने की उसकी इच्छा हमसे कहीं बढ़कर है। यद्यपि परमेश्वर स्वतः परिपूर्ण हो, तौभी मानव के साथ निवास करने की उसकी इच्छा भी एक ऐसा विषय है जो बाइबल में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पायी जाती है। उसे कितना दुःख होता होगा, जब अपनी वास्तविकता और महत्ता के सब प्रमाण देने पर भी मनुष्य उसके प्रेम पर संन्देह करते हैं।

इस्राएलियों के इतिहास के प्रारम्भ से ही परमेश्वर ने अपना अनवरत प्रेम उन पर प्रगट करना चाहा। वह सदा से उनसे प्रेम रखता आया यिर्म॰ 31:3; व्य॰ वि॰ 4:27)। उसने बताया कि वह प्रत्युत्तर में उनसे भी प्रेम चाहता था (व्य॰ वि॰ 6:5)। परन्तु वे भी हमारे सदृश्य थे। उन्होंने उसके प्रेम पर निरन्तर सन्देह किया। तौभी परमेश्वर उनसे प्रेम रखता रहा। जब उन्होंने कहा कि परमेश्वर उन्हें भूल गया हैं जब उसने यशायाह 49:15 जैसे मृदु वचनों में उत्तर दिया, "क्या हो सकता है कि कोई माता अपने दूधपिते बच्चे को भूल सकती है, परन्तु मैं तुझे नहीं भूल सकता।"। यदि बालक बढ़ गए हों, तो माता पूरे समय उनके विषय विचार नहीं करती। किन्तु यदि उसका बच्चा दूध पीने वाला हो तो उसके जागने के घन्टे में शायद ही कोई क्षण होगा जिसमें उसका ध्यान अपने बालक पर से हटा हो। रात्रि में सोने से पूर्व भी उसका अन्तिम विचार अपने बच्चे के विषय ही होता है जो उसके बाजू में सोता है। रात्रि के मध्य में जागने पर वह फिर अपने बालक को इसलिए देखती है कि वह ठीक से सो रहा है या नहीं। भोर को जागते ही उसका विचार पुनः अपने दूध पीते बच्चे के विषय होता है। माता अपने शिशु की देखभाल इसी प्रकार करती है। परमेश्वर का कथन है कि वह भी इसी प्रकार अपने लोगों की देख-रेख करता है।

होशे की पुस्तक में भी इसी बात पर जोर दिया गया है। होशे के व्यक्तिगत जीवन में जो दुखद अनुभव हुआ था वह एक दृष्टान्त था, कि परमेश्वर

इस्राएल के लिए कैसी भावना रखता है। उसमें लिखा है कि परमेश्वर का प्रेम भी उसी प्रकार सहनशील होता है जैसे एक विश्वासयोग्य पति का प्रेम उसकी अविश्वसनीय पत्नी के प्रति होता है। बाइबल में श्रेष्ठगीत की पुस्तक इस महान सत्य का चित्रण करती है–अर्थात् अपनी भटकी हुई दुल्हन के प्रति प्रेमी की विश्वासयोग्यता। अन्यथा परमेश्वर द्वारा इस पुस्तक के बाइबल में रखे जाने का और क्या कारण हो सकता है?

हमारा विश्वास इस तथ्य पर अवलम्बित होना चाहिए कि परमेश्वर हमसे जो व्यवहार करता है, वह उसके प्रेम पर आधारित होता है। "वह अपने प्रेम के मारे चुपका रहेगा," सपन्याह 3:17 के इस वाक्य के अनुवाद यह भी हो सकता है, "वह अपने प्रेम के कारण चुप रहकर तुम्हारे लिए उपाय कर रहा है"। क्या हम यह अनुभव करते हैं कि परमेश्वर हमारे जीवनों में जो कुछ घटित होने देता है, वह उसके प्रेमपूर्ण उपाय अनुसार होता है?

प्रत्येक कठिनाई और समस्या जो आपके और मेरे जीवन में आई है, अन्त में हमारी योजनाओं को पूर्ण नहीं होने देता, तो इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए ऐसा करता है कि हम उसके सर्वश्रेष्ठ उपाय से न चूकें। सम्भव है कि हम इस पृथ्वी पर इसे पूर्णतः न समझ सकें। हमें सिर्फ यह अनुभव करना है कि और कोई दूसरा कारण नहीं किन्तु सब कुछ प्रेमी परमेश्वर की ओर से आता है। इस अनुभूति से हमारे सब भय, चिन्ताएं और कड़्वाहट दूर हो जाएंगे जो साधारणतः हमें क्लेशित बनाए रखते हैं। विश्वासी इसी सत्य को जीवन में नहीं अपनाते इसीलिए वे व्याकुल और चिन्ताग्रस्त रहते हैं बाइबल में वर्णित "शान्ति, जो समझ से बिल्कुल परे है," उनकी नहीं होती। न ही वे "ऐसे आनन्दित और मगन होते" हैं "जो वर्णन से बाहर और महिमा से भरा हुआ है"।

प्रभु यीशु के समकालीन धार्मिक अगुओं को यद्यपि पुराने नियम का आत्यधिक ज्ञान था, तौभी परमेश्वर सम्बन्धी उनकी गलत विचारधाराएं थी। प्रभु यीशु ने अपनी सेवकाई द्वारा बहुत बार इन्हें सुधारा। प्रभु यीशु की ये समस्त बातें परमेश्वर की प्रेमपूर्ण प्रकृति को प्रदर्शित करती थी: उसका बीमारों को चंगा करना, दुखियों को सांत्वना देना, पाप से बोझिल लोगों को आमंत्रित करना, शिष्यों के साथ धैर्य रखना और अन्त में क्रूस पर अपना प्राण दे देना। कितनी ही बार उसने शिष्यों को यह सिखाने का यत्न किया, कि उनका स्वर्ग में निवास करने वाला पिता उनसे प्रेम रखता है तथा उसे उनकी प्रत्येक जरूरत का ध्यान है। पिता पर सन्देह करने के लिए उसने उन्हें कितनी बार डाँटा। यदि सांसारिक पिता अपने बालकों की जरूरतें पूर्ण करना जानते हैं, तो उनसे कितना

अधिक उनका प्रेमी परमेश्वर पिता उनकी आवश्यकताएं पूरी करेगा (मत्ती 7:9-11)। उड़ाऊ पुत्र के दृष्टान्त का अभिप्राय भी यह दर्शाना था कि परमेश्वर का महान प्रेम अपने भटके और विद्रोही सन्तानों के लिए कितना अधिक है। प्रभु यीशु ने यही प्रयत्न किया कि अपने युग में व्याप्त परमेश्वर सम्बन्धी भ्रान्त विचारों को, तर्कों, दृष्टान्तों तथा व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा दूर करे। क्रूस पर जाने से पहले अपनी अन्तिम प्रार्थना में उसने विनती की, कि संसार परमेश्वर के प्रेम को जाने (यूहन्ना 17:230। परमेश्वर अपने अपार और अनवरत प्रेम का सत्य, अपने वचन से हमारे हृदयों पर अनन्त के लिए गहराई से अंकित करे। परमेश्वर पर विश्वास का बीज सिर्फ इसी भूमि पर पनप सकता है, अन्यत्र नहीं।

प्रेम–हमारे समर्पण की प्रेरणा

परमेश्वर के लिए की गई समस्त सेवाओं का अभिप्राय क्या होता है–यह बात अत्यन्त महत्व की है। मसीह के न्याय आसन पर यह प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण नहीं होगा "तुमने क्या किया?" अपितु यह कि "तुमने इसे क्यों किया?" इन बातों का प्राथमिक महत्व नहीं कि हमने बाइबल पठन अथवा प्रार्थना में कितना समय व्यतीत किया, कितने ट्रैक्ट बाँटे, कितने लोगों को साक्षी दी। इन सबको करने में हमारी क्या प्रेरणा थी–यही अधिक महत्वपूर्ण है। सम्भव है कि हम सब स्वार्थमय प्रेरणा से अथवा रीति विधि अनुसार ही इन आत्मिक गतिविधियों में व्यस्त रहें। परमेश्वर की सेवा के इन दोनों प्रकारों का उदाहरण उड़ाऊ पुत्र के दृष्टान्त में दिखाई देता है (लूका 15:11-32)। छोटे पुत्र का अभिप्राय स्वार्थी था। बड़े पुत्र का अभिप्राय न्याय संगत था। इन पर हम संक्षेप विचार करेंगे।

एक दिन छोटे पुत्र ने पिता के पास आकर सम्पत्ति का अपना हिस्सा माँगा। जैसे हम पढ़ते आ रहे हैं कि परमेश्वर की प्रकृति उदाहरतापूर्वक देने की है, उसी प्रकार दृष्टान्त में पिता ने पुत्र को सहर्ष दे दिया। जितना शीघ्र छोटे बेटे को अपना इच्छित बंटवारा मिला, उसने पिता को छोड़ दूर देश को प्रस्थान किया। यह स्पष्ट दर्शाता है कि वह अपने पिता के प्रेम से प्रेरित नहीं था। उसकी एकमात्र प्रेरणा थी कि वह पिता से कितना ले सके। अनेक मसीही विश्वासी भी इसी प्रकार हैं। वे परमेश्वर के पास आते हैं कि उससे प्राप्त कर सकें। उनके धर्म की प्रेरणा व्यक्तिगत लाभ और आशीष प्राप्त करना होता है। अन्य धर्मों में सामान्यतः यह प्रेरणा अवश्य होती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वे दान देते, अथवा लम्बी तीर्थयात्रा करते हैं कि अपने ईश्वर से व्यक्तिगत

लाभ प्राप्त करें। परन्तु दुःख का विषय है कि यही प्रेरणा मसीहियों में भी विद्यमान होती है। कहा गया है कि नया जन्म पाए हुओं में से नब्बे प्रतिशत मसीही यदि सांसारिक लाभ के लिए नहीं (जैसा पहले भारत में हुआ), तो इस इच्छा से अवश्य प्रेरित होते हैं कि नरक के भय से बचकर स्वर्ग का आराम पाएं। यह सर्वथा बुरा नहीं किन्तु इस बात का द्योतक है कि अपने मसीही जीवन के प्रारम्भ से ही, हम व्यक्तिगत लाथ के स्वार्थमय अभिप्रायों को लेकर परमेश्वर के पास आते हैं। मेरे भाई, मेरी बहिन, आप स्वयं अपना हृदय जाँचकर देखिए कि यह सत्य है अथवा नहीं।

यह बुरा नहीं है यदि हम आत्मिक परिपक्वता की ओर बढ़ते हुए, प्रभु के पास आने की अपनी स्वार्थपूर्ण प्रेरणा को पहचानें और उसी के अनुसार अपना व्यवहार सुधारें। दुर्भाग्यवश हम ऐसे लाभ की सीमा में जीवन व्यतीत करते हैं। उनके जीवन में अत्यधिक समस्याएं रहती हैं तथा उनकी सेवा में बहुत कम आनन्द रहता है। कारण यही कि वे सदैव इसी चेष्टा में लोग रहते हैं कि परमेश्वर से पाएं, इसमें नहीं कि उसे दें। हम अपनी बाइबल क्यों पढ़ते हैं? अधिकतर इसलिए कि स्वयं के लिए आशिष प्राप्त करें। कभी-कभी इसलिए कि बाइबल के विद्धान होने का सम्मान प्राप्त करें। हमारा यह अभिप्राय कितना कम होता है कि परमेश्वर की इच्छा जानें, उसके अनुसार करें ताकि हमारे जीवनों द्वारा परमेश्वर की महिमा हो। हम प्रार्थना किस लिए करते हैं? बहुधा इसीलिए कि परमेश्वर का कार्य इस पृथ्वी पर उसकी महिमा के लिए बढ़े। क्या हमने कभी ठहरकर सोचा है कि प्रार्थना हम किस प्रेरणा से करते हैं? अधिकतर उस वस्तु को पाने के लिए, जिसकी हम तीव्र कामना करते हैं। हाँ, यह कोई आत्मिक आकाँक्षा भी हो सकती है। सम्भवतः इसलिए कि हम स्वयं पवित्र आत्मा से परिपूर्ण हो जाएं। तौभी प्रेरणा स्वार्थपूर्ण ही है, कि हम परमेश्वर द्वारा अधिक प्रयोग किए जाएं, यह नहीं कि उसका कार्य बढ़े चाहे उसके लिए किसी अन्य व्यक्ति का प्रयोग क्यों न किया जाए। स्वार्थ, स्वार्थ ही है चाहे हम अच्छी वस्तु के अभिलाषी ही क्यों न हों।

क्या आपको संगीत का वरदान है? अनेक विश्वासियों को इसका वरदान प्राप्त है। परन्तु उनमें से कितने ईमानदारी से कह सकते हैं कि वे सिर्फ परमेश्वर ही की महिमा खोजते हैं, अपनी नहीं। उन सभाओं पर विचार करें जहाँ परमेश्वर के वचन का प्रचार किया जाता है। क्या हमने विश्वासियों को बहुधा यह कहते नहीं सुना "वहाँ हमें आशिष मिली"? "हमें"—अभी भी जोर इस बात पर दिया गया कि उस सभा में उन्हें परमेश्वर की आशिष मिली। परमेश्वर

को महिमा मिली अथवा नहीं– इसका महत्व कम रह जाता है। अधिकाँश विश्वासी वहीं जाते हैं जहाँ उन्हें कुछ प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार वे जीवन भर आत्मिक शिशु नहीं, आत्मिक भिक्षु बने रहते हैं। क्योंकि जिन्हें वे अपना सर्वाधिक आत्मिक कार्य समझते हैं, उनमें भी स्वार्थ के पाप का खमीर लगा होता है। परमेश्वर के लिए हमारे सभी कार्यो के भस्म होने का जो चित्रण कुरि॰ 3:12–15 में है वह हमारी गलत प्रेरणाओं द्वारा किए गए कार्यों का परिणाम है। सच्चे पश्चाताप में सदैव हमारा जीवन स्वतः केन्द्रित होने की अपेक्षा परमेश्वर केन्द्रित होना चाहिए।

सामान्यतः दोनों भाइयों में बड़े भाई को ही अधिक अच्छा समझा जाता है। उसके व्यवहार की जाँच कर हमें ज्ञात होगा कि वह भी उतना ही दोषी था जितना उसका भाई। छोटे पुत्र की वापसी पर, पिता ने घर के लोगों के साथ आनन्द मनाया। सिर्फ जलन के कारण बड़ा बेटा उस आनन्द में सहभागी न हो सका। अपने भगोड़े भाई को इतना सम्मानित होते देख वह इतना क्रोधित हुआ, कि घर में प्रवेश तक करना न चाहा, अपने पिता के विनय पर उसने जो उत्तर दिया उसने उसको मनःस्थिति प्रगट होती है, जिसके द्वारा वह अब तक पिता की सेवा करता आया था। "मैं इतने वर्ष से तेरी सेवा कर रहा हूँ और कभी भी तेरी आज्ञा नहीं टाली, तौभी तुने मुझे कभी एक बकरी का बच्चा भी न दिया, कि मैं अपने मित्रों के साथ आनन्द करता।" उसकी पिता की सेवा प्रेम और आनन्दपूर्ण होने के बदले, उस नौकर के सदृश्य थी जो पैसो का हिसाब लगाने वाला हो और तनख्वाह पाने के लिए ही मालिक की सेवा करता हो। हममें से बहुतों के सदृश्य उसने भी अपने भाग्य की तुलना दूसरों से की और असंतोष का कारण ढूँढ़ निकाला। उसने जाना कि उन्हें आवश्यकता से अधिक आशिष प्राप्त हो रही है, जबकि आशिषों के योग्य होकर भी उसे कुछ नहीं मिला है।

क्या आप परमेश्वर की सेवा इसी प्रकार करते हैं? क्या आप बाइबल को अपना वैधानिक कर्तव्य समझ कर पढ़ते हैं और उसे छोड़ने के अपराध का साहस नहीं करते? यदि सिर्फ अपने विवेक के सन्तोष के लिए ही दैनिक मनन करते हैं तो वह सिर्फ सारहीन प्रथा ही होगी। कोई आश्यर्च नहीं कि अनेक विश्वासी अपने बाइबल पठन, प्रार्थना अथवा साक्षी में कोई हर्ष अनुभव महसूस नहीं करते। कोई आश्चर्य नहीं कि परमेश्वर के लिए उनकी सेवकाई शीघ्र ही भारस्वरूप हो जाती है। कारण यह कि वे परमेश्वर के अनुग्रह द्वारा बच कर स्वेच्छा से स्वयं को पुनः व्यवस्था के आधीन कर देते हैं।

मसीह की मृत्यु द्वारा हम व्यवस्था के लिए मृतक है ताकि जी उठे हुए मसीह से हमारा विवाह हो। रोमियों 7:1-6 की यही शिक्षा है। पौलुस की अजीब अभिव्यक्ति का अर्थ सिर्फ यह है कि हम अब परमेश्वर की उस प्रकार सेवा न करें जिस प्रकार दास स्वामी की करता है। किन्तु सब से हम उसकी सेवकाई "आत्मा की नई रीति" पर करें, जैसे प्रेम के कारण पत्नी अपने पति की सेवा करती है। इन दोनों के मध्य विशाल अन्तर है दास की ओर पहले ध्यान दीजिए। वह अनेक नियमों और विधियों के अन्तर्गत कार्य करता है। उसके काम का समय बँधा होता है तथा तनख्वाह भी बँधी रहती है। आधुनिक विश्व में वह हड़ताल कर देता है यदि सोचता है कि उससे अधिक काम लिया जा रहा है या कम तनख्वाह दी जा रही है।

दुर्भाग्यवश परमेश्वर की कई सन्तान उसकी सेवा इस प्रकार कर रही है। वह पूर्वनियोजित कार्यों को विश्वासयोग्यता से सम्पन्न करता है। उसका थोड़ा समय दैनिक मनन होता है, जिसके पश्चात् वह जरूरत में पड़े कुछ लोगों के लिए नाम लेकर तोते के समान परमेश्वर से "विनती" करता है। इसके साथ ही वह सप्ताह में एक या दो, अथवा तीन सभाओं में जाता है। इन साधनों से वह परमेश्वर को इतना प्रसन्न करना चाहता कि उस पर अथवा उसके घर पर कोई विपत्ति न पड़े। उसके सब बच्चे परीक्षा में उर्त्तीण हो जाए और पदोन्नति पाएँ। इससे भी आगे उसे अपने "इवेन्जेलिकल" होने का गर्व रहता है। यदि आशा के विपरीत कोई आपत्ति उन पर आ पड़ती है, तो वह परमेश्वर और मनुष्यों पर दोष देने को उतारू हो जाता है।

हाँ, मैं सहमत हूँ कि भय से परमेश्वर की सेवा करना, उसकी कुछ सेवा न करने से कहीं अधिक अच्छा है। किन्तु भाइयों और बहनों एक और भी उच्च, श्रेष्ठ उपाय है–प्रेम का उपाय (1 कुरि॰ 12:31; 13:1) परमेश्वर नहीं चाहता कि मैं और आप इस भय से अपने धार्मिक कार्यों को करते रहें, कि न करने से परमेश्वर दण्ड देगा। परमेश्वर की इच्छा है कि हम उसकी सेवा इस प्रकार करें जैसे विश्वासयोग्य पत्नी अपने पति की सेवा प्रेम के वशीभूत हो करती है। वह तनख्वाह के लिए सेवा नहीं करती। न ही उसके काम का समय बंधा होता है। वह बंधे हुए नियमों के अनुसार कार्य नहीं करती, न ही पुरस्कार की आशा रखती है। यदि उसका पति जीवन भर के लिए अपंग अथवा लाचार होता है, तौभी वह हर्ष से स्वयं का भारी त्याग कर कार्य करती है। वह अपने कार्य के लिए बदला नहीं चाहती। सिर्फ प्रेम के कारण ही उसकी सेवा करती है। परमेश्वर हमसे ऐसी ही सेवा चाहता है, क्योंकि ऐसी ही सेवा उसने अपने

पुत्र द्वारा हमें दी है। प्रेम के सिवाय किसी अन्य भावना से प्रेरित परमेश्वर की सेवा उसकी दृष्टि में महत्वहीन है।

स्वार्थपूर्ण लक्ष्यों से अथवा रीति विधि अनुसार परमेश्वर की सेवाकाई करना सिर्फ दासता का कार्य है। यह तो बेयरिंग में बालू भरकर मोटर चलाना है। हर कदम पर खरखराहट की आवाज सुनाई पड़ती है। तौभी, दुर्भाग्यवश, हममें से कितनों की सेवकाई और जीवनों का यही हाल है। परन्तु बालू को साफ कीजिए और मशीन में तेल डालकर देखिए। कितनी शान्त तथा अच्छी तरह और तीव्र गति से मोटर चलती है! परमेश्वर चाहता है कि आपके बाइबल अध्ययन और प्रार्थना में बिताया समय भी ऐसा ही हो। उसकी इच्छा है कि आपकी आराधना, साक्षी, और प्रत्येक मसीही गतिविधि स्वेच्छा से हर्षपूर्वक, उसके प्रेम के कारण की गई हो।

पुराने नियम के महान भक्त पुरुष अय्यूब का व्यवहार इन दोनों पुत्रों के व्यवहार से कितना भिन्न था। अय्यूब में ऐसी सेवकाई का चित्रण है जो परमेश्वर को ग्रहणयोग्य है। शैतान ने अय्यूब पर दोषारोपण किया कि अय्यूब अपनी भरपूरी के कारण ही परमेश्वर की सेवा कर रहा है। क्या परमेश्वर ने अय्यूब को असीमित आशिष और धन से भरपूर नहीं किया था? क्या ऐसे परिणामों की प्राप्ति के लिए कोई भी व्यक्ति कार्य करना न चाहेगा?

सत्य को सिद्ध के लिए परमेश्वर ने अनुमति दी की शैतान अय्यूब की परीक्षा ले। उसने पहले ही प्रहार में अय्यूब की सब सांसारिक सम्पत्ति को छीन लिया। इसके पश्चात् उसके पुत्रों की बारी आई और अन्ततः अय्यूब का शरीर अति क्लेशित किया गया। इन आपत्तियों के होते हुए भी अय्यूब ने परमेश्वर की स्तुति करना न छोड़ा। हम उसके कुछ शब्दों पर ध्यान दें: "यहोवा ने दिया और यहोवा ने ही लिया; यहोवा का नाम धन्य है। ...क्या हम जो परमेश्वर के हाथ से सुख लेते हैं, दुःख न लें? ...यदि वह मुझे घात करे तौभी मैं उस पर विश्वास रखूँगा... और यह भी मेरे बचाव का कारण होगा... मुझे तो निश्चय है, कि मेरा छुड़ानेवाला जीवित है...अपनी खाल के इस प्रकार नाश हो जाने के बाद भी, मैं शरीर में होकर ईश्वर का दर्शन पाऊँगा... जब वह मुझे पा लेगा तब मैं सोने के समान निकलूँगा।" (अय्यूब 1:21; 2:10; 13:15, 16; 19:25-26; 23:10)। वह निरन्तर विश्वासयोग्य बना इसीलिए अन्त में परमेश्वर ने अय्यूब की सराहना की (42:7)। परखे जाने से ज्ञात हुआ कि अय्यूब परमेश्वर की सेवा शुद्ध अभिप्राय से कर रहा है। अतः परमेश्वर ने उसको पहले से दुगुनी आशिषें दीं। जिनमें अय्यूब के सदृश्य आत्मा है, उन्हीं

को परमेश्वर की भरपूर आशिष प्राप्त होती है। स्मरण कीजिए कि अय्यूब तो पुराने नियम के युग का भक्त था। यदि वह इतना ऊँचा उठ सकता था, तो नये नियम के युग के व्यक्ति को कितना ऊँचा नहीं उठाना चाहिए!

आज जो प्रदेश चेकोस्लोवाकिया कहलाता है, वहाँ 2000 वर्षों पूर्व परमेश्वर की आत्मा द्वारा मोरोविया में मिशनरी जागृति आरम्भ हुई। इस कार्य के परिणाम-स्वरूप कई अच्छे मसीही प्रचारक हुए, जो सुसंदेश को लेकर विदेश गए। परमेश्वर के प्रति इनकी विलक्षण भक्ति भावना थी। ऐसे भक्त आधुनिक समय में बहुत कम देखे जाते हैं। इनमें से कुछ मोरोविया के विश्वासी सुसमाचार सुनाने अफ्रिका गए। वे एक कोढ़ी बस्ती के निकट पहुँचे। उन कोढ़ियों को प्रभु यीशु का सुसंदेश सुनाने की उनकी उत्कृट इच्छा हुई। उनको वहाँ जाना मना था, यह सोचकर कि लौटने पर वे कीटाणुओं को ले आएंगे और रोग दूसरी जगह फैल जाएगा। तौभी उन आत्माओं को प्रभु के लिए जीतने की उनकी इच्छा इतनी बलवंत हुई कि उन्होंने अपने जीवन की परवाह न की। वे वहाँ प्रभु के लिए जीने और मरने को तैयार हो गए। मोरेविया के विश्वासियों का एक अन्य उदाहरण है। उन्होंने पश्चिमी द्वीप समुदाय में एक ऐसे स्थान का वर्णन सुना जहाँ सभी दास रहते थे। वहाँ गुलामों को छोड़ और कोई प्रवेश नहीं कर सकता था। इन गुलामों को उन्होंने प्रभु के लिए जीतना चाहा। उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता त्याग दी। उस द्वीप के मालिक के हाथ वे जीवन भर के लिए गुलाम होकर बिक गए। कारण वही था कि वे अपने साथी-गुलामों को ओजस्वी सुसंदेश प्रचार कर सकें।

इन व्यक्तियों ने ऐसा त्याग क्यों किया? क्या उन्होंने स्वार्थपूर्ण अभिप्राय से ऐसा किया? क्या उनका अभिप्राय प्रसिद्धि पाना था जैसा कि आज अनेक मसीही लोगों का है? अथवा क्या उनकी सेवा रीतिविधि अनुसार थी कि परमेश्वर से बदले में लाभ प्राप्त कर सकें। नहीं, कदापि नहीं। परमेश्वर के लिए विशुद्ध प्रेम के कारण ही उन्होंने संसार की समस्त प्रिय वस्तुओं को त्यागा, ताकि उन कोढ़ियों और गुलामों में से "मेम्ने के लिए उसके दुःखों का फल जीतें"। इस पृथ्वी पर अनन्त महत्व का कुछ कार्य करने वाले वे ही व्यक्ति हैं जिन्होंने परमेश्वर की सेवा प्रेम के कारण की है। याकूब प्रेम ही के कारण राहेल को अपनी करने के लिए चौदह वर्ष की सेवा कर सका (उत्पत्ति 29:20)। उसके प्रेम ने उसे इस योग्य किया कि श्रम की थकावट भूल जाये। मसीह के प्रति प्रेम मुझे और आपको भी इस योग्य करेगा कि हम कठिन से कठिन सेवा सहर्ष कर सकें।

प्रेम—हमारे आत्मिक होने की वास्तविक जाँच

इस अध्याय के अन्त में हम यूहन्ना 21:15-17 अनुसार जीवित प्रभु के दर्शन पर ध्यान देंगे। प्रभु के क्रूस पर मृत्यु के पूर्व पतरस ने उसका तीन बार इन्कार किया था। वह उन निराशाजनक साढ़े तीन वर्षों की पराकाष्ठा थी, जिनमें वह प्रभु के साथ रहा था। इस बीच उसने स्वयं को अभिमानी, अपनी ही हाँकने वाला और प्रार्थना न करने वाला व्यक्ति सिद्ध किया था। तौभी प्रभु ने अपनी भेड़ों को खिलाने का कार्य पतरस को सौंपते हुए, इन कमजोरियों का कोई उल्लेख नहीं किया। उसने पतरस को यह ललकार तक नहीं दी कि भविष में दीन और प्रार्थना करने वाला बने, निर्भीकतापूर्वक साक्षी दी, चाहे प्रभु के लिए सताव भी क्यों न सहना पड़े। नहीं उसने ऐसा कोई प्रश्न नहीं किया, यद्यपि ये ऐसी योग्यताएँ है जिन्हें हमें एक आत्मिक व्यक्ति में, विशेषतः उस व्यक्ति में देखना चाहिए जो परमेश्वर के लोगों के मध्य अगुवा होगा। प्रभु यीशु को ज्ञात था कि सिर्फ एक सरल प्रश्न ही पर्याप्त है। यदि इस प्रश्न का ठीक प्रत्युत्तर मिला, तो सब बातें स्वतः ठीक हो जाएंगी। "क्या तू इनसे बढ़कर मुझ से प्रेम रखता है?" मसीह के लिए प्रेम ही किसी व्यक्ति के आत्मिक होने की परख है। संसार के स्तर दूसरे हैं। विश्वासियों के मध्य भी अन्य तरीकों से व्यक्ति के आत्मिक होने का अनुमान लगाया जाता है। यदि व्यक्ति कलीसिया में उच्च पद पर, यहाँ तक कि बिशप के पद पर भी पहुँच जाए, तो हम स्वाभाविक रूप से अनुमान लगाते हैं कि वह व्यक्ति आत्मिक है। ऐसा होना जरूरी नहीं। नया जन्म और उसके पश्चात् मसीह के लिए प्रेम ही व्यक्ति को आत्मिक बनाता है। आज यह सम्भव है कि कलीसिया का बिशप नया जन्म भी न पाया हो। बाइबल स्कूल की उपाधि अथवा अनेक उपाधियों की प्राप्ति भी इसका प्रमाण नहीं हैं। न ही बाइबल के यथार्थ सिद्धान्तों को अपनाने वाले श्रेष्ठ सेमिनरी में प्रवेश पाना ही आत्मिक होने का लक्षण है! सम्भव है आप पूरे समय के लिए मसीही सेवक हों अथवा कलीसिया सभाओं में नियमित उपस्थिति, बाइबल का अधिक ज्ञान अथवा सुसमाचार प्रचार के लिए अथक उत्साह ऐसी बातें हैं जिनको हम आत्मिक होने के चिन्ह समझते हैं, अथवा जो हमारी धारणाएँ हैं।

विशेष प्रकार का वस्त्र और धर्म का रूप भी हमें धोखा दे सकता है। किन्तु इसका कोई महत्व नहीं। परमेश्वर की दृष्टि में सच्चे आत्मिक होने की परख सिर्फ एक ही बात है: **आपका उसके प्रति प्रेम।** यह तो आपके और परमेश्वर के बीच का ही सम्बन्ध है। वह प्रश्न करता है: "क्या तू मुझ से प्रेम रखता है?" उत्तर देना आपका काम है।

इसहाक ने रिबका से प्रेम किया। उसने बदले में उसकी सेवा नहीं अपितु प्रेम की आकाँक्षा की। उसी प्रकार प्रभु हमसे जो अपेक्षा करता है वह प्राथमिक रूप से हमारी सेवा नहीं किन्तु हमारा प्रेम है। जहाँ सच्चा प्रेम होगा, उसका परिणाम स्वतः सेवा होगी।

इब्राहीम के दास के साथ रिबका ने मसोपोटामिया से कनान तक 300 मील लम्बी यात्रा की। आपके अनुमान से उन्होंने रास्ते भर किन विषयों पर बात की होगी? यदि वह वस्तुतः इसहाक से प्रेम रखती तो अवश्य मार्ग में उसके विषय प्रश्न करती। अपने साथी और अगुवे से वह अवश्य इसहाक के सम्बन्ध में असंख्य प्रश्न करती। इसी प्रकार की भुख बाइबल पढ़ने के लिए उस विश्वासी को होगी जो प्रभु यीशु से सच्चा प्रेम रखता है। वह प्रतिदिन पवित्र आत्मा को निमन्त्रण देगा कि वह उस पर प्रभु की सुन्दरता अधिकाधिक प्रगट करता जाए। हमने पहले पढ़ा कि यही एक बात थी, जिसकी दाऊद अभिलाषा करता था (भजन संहिता 27:4)।

युगों से ऐसे पुरुष होते आये हैं जिन्होंने इस बात में दाऊद का अनुसरण किया है। एबरडीन के कैदखाने में पड़े हुए सेमुएल रूदरफोर्ड ने कहा, "हे मेरे प्रभु, यदि मैं तेरा आलिंगन कर सकता और तुझे अपना कह सकता तो मेरे और तेरे मध्य एक विशाल नरक भी होता, और यदि मैं बिना उसे पार किये तुझ तक नहीं पहुँच सकता, तो बिना सोचे विचारे मैं कूद कर उसे अवश्य पार कर लेता"। आह, परन्तु दुभाग्र्यवश, कितने कम व्यक्तियों में ऐसी भूख और प्यास विद्यमान है! काश परमेश्वर हम पर नई रीति से प्रगट करे कि उसके प्रति हमारे प्रेम की माप ही, हमारे आत्मिक होने की माप है। इसलिए कि हम स्वयं को धोखा न दे सकें, परमेश्वर ने स्वतः हमें नापने के लिए गज़ दिया है। हमारे प्रेम का प्रमाण सिर्फ हमारी आज्ञाकारिता ही है (यूहन्ना 14:15, 21, 23, 24)।

बाइबल की अन्तिम पुस्तक में इस गम्भीर सत्य को प्रमाणित किया गया है। उसमें परमेश्वर ने इफिसियों की कलीसिया को डाँटा, क्योंकि उन्होंने प्राथमिक बातों को महत्व नहीं दिया था (प्रका॰ 2:1-5)। दूसरी बातों में वह उत्तम कलीसिया थी। वहाँ के मसीहियों ने धैर्यपूर्वक परिश्रम किया था। उन्होंने बुराई से घृणा की थी, झूठे प्रेरितों को अपने मध्य से दूर किया था। उन्होंने धैर्य के साथ मसीह के नाम के लिए दुःख उठाया था। मन प्राण से वे परमेश्वर की सेवकाई में लगे थे और किसी बात के कारण अपना कार्य नहीं छोड़े थे। तौभी, इन सब के रहते हुए परमेश्वर के लिए उनकी साक्षी को ही खतरा था। उसने कहा कि वे गिर गए हैं और पश्चाताप न करने से वह अपना अभिषेक उन

पर से हटा लेगा, जो उनकी साक्षी पर उसकी सहमति का सूचक है। यह गम्भीर कमी क्या थी? सिर्फ इतना ही कि परमेश्वर के लिए अपने प्रेम में वे ठण्डे पड़ गए थे। उन्होंने न सिर्फ अपना पहला प्रेम ही त्यागा था किन्तु अपना ध्यान दूसरी ओर केन्द्रित भी कर लिया था। वे अपनी सभाओं, सम्मेलनों में (यदि ऐसा कहें तो) और अन्य मसीही क्रियाओं में इतने व्यस्त थे कि उन्होंने परमेश्वर को ही त्याग दिया था, जिसके कारण इन समस्त क्रियाओं का अस्तित्व था। स्पष्ट है कि परमेश्वर हमारी समस्त क्रियाओं से बढ़कर हमारे हृदय का प्रेम और भक्ति चाहता है। शैतान को इस बात का ज्ञान है। वह जी तोड़ परिश्रम करता है कि हमें किसी न किसी प्रकार मसीही क्रियाओं में से हटा दें, ताकि हम अपने प्रिय प्रभु के साथ समय व्यतीत न कर सकें और अपना प्रेम छोड़ दें।

प्रभु यीशु ने चिताया कि अन्तिम दिनों में अपराध संसार में इतना बढ़ जाएगा कि लोगों का परमेश्वर के प्रति प्रेम ठण्डा हो जाएगा (मत्ती 24:12)। हम उन्हीं दिनों में रह रहे हैं। प्रभु के नाममात्र के अनुयायियों में से अधिकाँश का ताप्ताँश शून्याँक से भी नीचे रहा है। जब तक हम स्वयं सतर्क न रहें, हम देखेंगे कि कड़ी शीतल वायु हमारे अन्दर भी प्रवेश कर रही है। मेरे भाइयों और बहनों, चाहे आप सभी वस्तुओं को छोड़ दें, किन्तु इस बात को न छोड़िये–परमेश्वर के लिए अपना प्रेम। दाऊद की नाईं उसकी सुरक्षा उस वस्तु के समान कीजिए, जिसे आप मन प्राण से चाहते हों तथा अपने जीवन पर्यन्त उसी की खोज में रहिए।

"सबसे बड़ा प्रेम है। प्रेम का अनुकरण करो।"

(1 कुरिन्थियों 13:13; 14:1)

4

तुझ में एक बात की घटी है

"और जब वह निकलकर मार्ग में जाता था, तो एक मनुष्य उसके पास दौड़ता हुआ आया, और उसके आगे घुटने टेककर उससे पूछा, हे उत्तम गुरु, अनन्त जीवन का अधिकारी होने के लिए मैं क्या करूँ? यीशु ने उससे कहा, तू मुझे उत्तम क्यों कहता है? कोई उत्तम नहीं, केवल एक अर्थात् परमेश्वर। तू आज्ञाओं को तो जानता है, हत्या न करना, व्यभिचार न करना, चोरी न करना, झूठी गवाही न देना, छल न करना, अपने पिता और अपनी माता का आदर करना। उसने उसे कहा, हे गुरु, इन सबको मैं लड़कपन से मानता आया हूँ। यीशु ने उस पर दृष्टि करके उससे प्रेम किया, और उससे कहा, तुझमें एक बात की घटी है; जा, जो कुछ तेरा है, उसे बेचकर कंगालों को दे, और तुझे स्वर्ग में धन मिलेगा, और आकर मेरे पीछे हो ले। इस बात से उसके चेहरे पर उदासी छा गई, और वह शोक करता हुआ चला गया, क्योंकि वह बहुत धनी था।"

(मरकुस 10:17-22)

हम यहाँ एक धनी नौजवान के विषय में पढ़ते हैं जो प्रभु यीशु के पास बड़ी उत्सुकता-पूर्वक आया, किन्तु निराशा के साथ लौट गया। वह असाधारण नवयुवक था क्योंकि प्रभु के निकट दौड़ते हुए आया। इस प्रकार उसने सत्य को जानने की अपनी उत्कंठा प्रगट की। उसने घुटने टेके जो उसकी दीनता का सूचक है। उसके प्रश्न द्वारा प्रगट है कि उसे अनन्तकाल की बातों में रुचि है। बहुत कम नवयुवकों में ऐसी रुची रहती है, और सम्भवतः धनी युवकों में तो और भी कम होती है। फिर, जब प्रभु यीशु ने उससे आज्ञाओं के विषय कहा, वह निस्संकोच जवाब दे सका कि उसने उन सबका पालन किया है। उसने कभी व्यभिचार नहीं किया था, हत्या नहीं की थी। उसने कभी झूठी गवाही

नहीं दी थी, किसी को छला नहीं था, न ही कभी अपने माता पिता का अनादर किया था। इसलिए कि प्रभु यीशु ने उसके कथन का खण्डन नहीं किया, हमें सहमत होना चाहिए कि वह एक विश्वासयोग्य, भला, नैतिक, सच्चा, और उत्सुक युवक था। इतना सब होंते हुए भी प्रभु यीशु ने उसके जीवन की एक घटी पर ऊँगली उठाई। यह कभी इतनी महत्वपूर्ण थी कि इसके बिना उसकी अन्य योग्यताएँ व्यर्थ थी। क्रूस उठाकर प्रभु यीशु के पीछे चलने को वह तैयार नहीं था, क्योंकि सांसारिक सम्पत्ति से उसका अत्याधिक लगाव था।

पद 21 में बताया गया है कि यीशु ने उसकी ओर देख उससे प्रेम किया। प्रभु यीशु ने देखा कि उसकी जवानों में अपार क्षमताएँ हैं, जिनका या तो परमेश्वर की महिमा के लिए सदुपयोग हो सकता है अथवा स्वतः और शैतान के लिए दुरुपयोग। और यीशु ने उससे प्रेम किया। आज प्रभु जब नौजवानों को देखता है, तो ठीक इसी प्रकार देखता है। वह प्रत्येक नौजवान के जीवन में छिपी हुई सम्भावनाओं को देखता है। उसे यह भी ज्ञात है कि अधिकाँश जीवन उन वस्तुओं पर बर्बाद हो रहे हैं जो चिरकाल की नहीं हैं। आधुनिक समय में अधिकाँश नवयुवकों की आँखें उन वस्तुओं से चौंधिया जाती हैं। इस जवान के समान वे भी दुखित और बोझिल हृदय से लौट जाते हैं। यीशु का अनुगमन करने में जो त्याग करना है उससे वे पीछे हट जाते हैं। इस प्रकार उस नवयुवक के सदृश्य अपने जीवन में उस अभिप्राय को पूर्ण करने का सौभाग्य गंवा देते हैं, जिसके लिए उनकी सृष्टि और उनका उद्धार हुआ है। अपने जीवन के लिए वे सदाकाल का दुःख चुन लेते हैं।

मत्ती 11:28 के अनुसार प्रभु यीशु ने पाप से बोझिल लोगों को आमंत्रण दिया। अनेक लोग इस निमंत्रण से परिचित रहते हैं पर इस बात से अज्ञात रहते हैं कि ठीक इसके बाद प्रभु ने क्या कहा। जिन्होंने उससे ये शब्द सुने, "मेरे पास आओ," उनसे उसने आगे यह भी कहा, "मेरा जूआ अपने ऊपर उठा लो; और मुझसे सीखो" (पद 28, 29) यह प्रभु यीशु के इस कथन का समानार्थक है, "प्रतिदिन अपना क्रूस उठाए हुए मेरे पीछे हो ले"। मत्ती 11:28, 29 के दोनों कथनों के लिए प्रभु का अभिप्राय था कि ये कभी अलग न किये जाए। उसका अभिप्राय था कि जितने पास आएँ, वे अपना क्रूस उठाकर उसका अनुसरण करें। उसने आशा की थी, कि कोई उसके पीछे न आए, जो क्रूस उठाने को तैयार न हो। प्रभु यीशु ने मनुष्यों के समक्ष समर्पण के दो अलग स्तर कभी नहीं रखे– एक उसके लिए जो सिर्फ उद्धार और स्वर्ग में प्रवेश पाना चाहते थे और दूसरा उनके लिए जो क्रूस उठाकर उसके पीछे हो लेने को तैयार

थे। उसने मनुष्यों के समक्ष सिर्फ एक ही स्तर रखा। जितने उसके पास पापों की क्षमा के लिए आते, उन सभों को उसका अभिप्राय पूर्ण करना था। अनेक मसीही प्रचारक दो अलग-अलग स्तरों को प्रस्तुत करते हैं—पहला प्रभु को उद्धारकर्त्ता स्वीकार करना और दूसरा उसको प्रभु मान लेना। किन्तु यह पौलुस के शब्दों में "दूसरा सुसमाचार" है और मसीह का वह सुसमाचार नहीं जिसका प्रचार प्रेरितों ने किया था (गल॰ 1:6-9)। जिसे परमेश्वर ने जोड़ा है उसे मनुष्य अलग करते हैं। मसीही सुसंदेश के इन दोनों आवश्यक तत्वों का विच्छेद ही वह कारण है कि मसीही कलीसिया निर्जीव है।

सम्भवतः हममें से बहुत थोड़े लोगों ने क्रूस उठाने के वास्तविक भेदों को समझा है हममें से अनेक जीवन के आकस्मिक बोझ को अपना क्रूस समझते हैं कई अपनी शारीरिक दुर्बलताओं को अपना क्रूस कहते हैं। कई अपने उद्दंड बालकों अथवा अविनीत स्त्रियों या प्रेम न रखने वाले पतियों से भी क्रूस की तुलना करते हैं। मैं कहता हूँ ये तो उन्हीं क्रूसों के सदृश्य है जिन्हें गिरजाघरों की सीढ़ियों पर रखा जाता है। इनमें से कोई भी वह क्रूस नहीं है जिसकी ओर यीशु ने इन शब्दों में संकेत किया, "अपना क्रूस उठाए" आधुनिक मसीही कलीसिया ने मसीह के क्रूस को इतना सुन्दर धार्मिक चिन्ह माना है कि अनेक लोगों पर यीशु के अभिप्राय का गलत प्रभाव पड़ता है।

प्रभु यीशु जब इस पृवी पर जीवित थे, उन दिनों में क्रूस मृत्यु का साधन था। वह लज्जास्पद वस्तु थी। यदि आप उस युग में यरूशलेम में निवास करते और एक दिन सड़क पर रोमी सिपाहियों की भीड़ के साथ क्रूस उठाते देखते, तो बिना संदेश किए बता सकते थे कि वह व्यक्ति कहाँ जा रहा था। वह मृत्यु दण्ड के स्थान पर जा रहा था। उसने अपने सम्बन्धियों, मित्रों से अन्तिम भेंट की होगी और वह अब उस पथ से होकर जा रहा था, जहाँ से होकर फिर कभी नहीं लौटेगा। उसने संसार को आखरी नमस्कार कहा था और अब उस संसार को सदैव के लिए छोड़ रहा था। अपनी सम्पत्ति में से वह अब कभी कुछ नहीं देखेगा। और यह भी कि वह लज्जा और अपमान के साथ इस संसार से कुच कर रहा था। (क्रूस की मृत्यु लज्जास्पद मृत्यु थी।) प्रभु यीशु के कथन में इन सभी बातों का समावेश था, जब उसने धनी युवक को क्रूस उठाकर अपने पीछे हो लेने को कहा। क्योंकि उसके पीछे हो लेना उसी पथ पर चलना है और और प्रभु यीशु यरूशलेम के उस पथ पर थे जिसका अन्त क्रूस की मृत्यु थी। क्रूस के इस चित्र को मन में खींचे बिना, हम विश्वासी के जीवन में क्रूस के विषय कहे गये मसीह के कथन का तात्पर्य कभी पूर्णतः नहीं समझ सकेंगे।

आगे बढ़ने से पहले हमें यहाँ एक और बात पर ध्यान देना आवश्यक है वह यह कि प्रभु यीशु क्रूस उठाने के लिए किसी को बाध्य नहीं करता। पिछले अध्याय में हमने पढ़ा कि परमेश्वर सदैव मानव की स्वतन्त्र इच्छा शक्ति का सम्मान करता है। यीशु ने कहा, "यदि कोई मेरे पीछे आना चाहे... तो प्रतिदिन अपना क्रूस उठाए हुए मेरे पीछे हो ले" (लूका 9:23)। यहाँ तनिक दबाव नहीं है। उसकी इच्छा है कि हम स्वेच्छापूर्वक समर्पण कर परमेश्वर के समस्त अभिप्रायों को पूर्ण करें।

एक अन्य स्थल पर प्रभु यीशु ने गेहूँ के दाने का उदाहरण दिया जो जमीन पर गिर कर मरता और बहुत फल लाता है (यूहन्ना 12:24)। यहाँ पुनः उसका संकेत क्रूस पर होने वाली अपनी मृत्यु के विषय था किन्तु इस पद का सिद्धान्त उन सभों पर लागू होता है जो आत्मिक जीवन में फलवन्त होना चाहते हैं। गेहूँ का एक दाना उस समय तक अकेला रहेगा जब तक अन्य दानों के साथ कोठे में पड़ा रहेगा। यदि उसे फल लाना है तो दूसरे दानों से अलग होकर अकेले जमीन में गिरना और मरना है। तभी उससे विपुल उत्पादन होगा। अतः इस अध्याय में हमारा विषय– मसीह के साथ हमारी मृत्यु है। हम पुनः तीन शीर्षकों के अन्तर्गत इस पर विचार करेंगे। प्रथम हम देखेंगे कि ***क्रूस का अर्थ अलगाव है, दूसरा क्रूस का अर्थ मृत्यु है और तीसरा क्रूस से विजय और फल लाने की क्षमता प्राप्त होती है।***

क्रूस का अर्थ अलगाव

कलवरी के क्रूस पर यीशु की मृत्यु के समय दो और डाकू भी यीशु के दोनों बाजू में क्रूस पर लटकाए गए थे। दुःख की घड़ी में, यदि शारीरिक रूप से कहा जाये तो वे यीशु के क्रूस द्वारा अलग थे। परिणाम यह हुआ कि वे चिरकाल के लिए अलग हो गए। एक विनाश के लिये तथा दूसरा मसीह के साथ अनन्त जीवन के लिए। मसीह का क्रूस सदैव क्या करता है– इसकी यह एक तस्वीर है। वह ज्योति का चुनाव करने वाले मनुष्यों को, अन्धकार का चुनाव करने वाले व्यक्तियों से अलग करता है। हाँ, यह अलग करता है।

आज अनेक सच्चे मसीही ऐसे हैं जो सोचते हैं कि मानव जाति को अलग करने का कोई भी प्रयत्न शैतान की ओर से है तथा उनमें एकता लाने का प्रयास सदैव परमेश्वर से होता है। यह इसलिए, क्योंकि वे अपनी बाइबल से अच्छी तरह परिचित नहीं हैं। बाइबल के पहले ही परिच्छेद में अलगाव का विवरण है। उत्पत्ति 1:3 में हम प्रकाश की सृष्टि के विषय में पढ़ते हैं। पद 4 के अनुसार परमेश्वर ने देखा कि प्रकाश अच्छा है। इसके पश्चात् उसने उजाले को अन्धेरे से अलग किया। यदि उसने दोनों को एक साथ मिलने दिया होता

तो सन्ध्या–काल का सा प्रकाश हो जाता। परन्तु परमेश्वर ने जिस जीवन–दायक अभिप्राय से ज्योति की सृष्टि की, उसकी पूर्ति नहीं होती। इस प्रकार हम देखते हैं कि परमेश्वर ही प्रथम था जिसने अलगाव किया। वह विशिष्टताओं का परमेश्वर है और पूरी बाइबल में हमें यही सिद्धान्त स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। "विधियों के अलगाव" से लोगों के अलगाव की बात भी आती है। परमेश्वर ने इस्राएल को अन्य देशों के साथ विवाह सम्बन्ध करने की निषेधाज्ञा दी, क्योंकि उन्हें अन्धकार में बैठे हुए राष्ट्रों के लिए स्वयं प्रकाश होना था। नये नियम में इन्हीं कारणों से कलीसिया को संसार से अलग रहने के लिए स्पष्ट कहा गया (2 कुरि॰ 6:14)। वस्तुतः यूनानी भाषा के "एकलीसिया" शब्द का अंग्रेजी "कलीसिया" हुआ है, जिसका अर्थ ही है "बुलाये हुये लोग"।

कलीसिया और संसार उन दोनों डाकुओं से कुछ न कुछ मिलते–जुलते हैं, तो कलवरी पर यीशु के दोनों बाजू में लटके हुये थे। मूलतः दोनों दुष्ट थे, किन्तु उनमें से एक ने पश्चाताप किया था अतः उसे क्षमा और छुटकारा मिला। दूसरे व्यक्ति को मृत्यु बिना क्षमा पाये अपने पाप में फसें हुये हुई। अतः उनका अनन्त भाग्य भी भिन्न था, जैसा संसार और कलीसिया के लोगों का है। क्योंकि संसार की आत्मा परमेश्वर आत्मा से एकदम विपरीत है। वह अन्धेरे से प्रेम रखती और ज्योति के विमुख रहती है। वह स्वयं अपना भाग्य चुनाव करती– तथा पाती है।

कई बार परमेश्वर के लिए अलगाव का अर्थ धार्मिक संसार से भी विलग हो जाना होता है। जब मसीही कलीसिया संसार की आत्मा का सा आचरण करती है परमेश्वर की आत्मा के सदृश्य नहीं, और परमेश्वर के वचन के बदले मनुष्यों की प्रथा के द्वारा निर्देशित होती है, तो हमें एक चुनाव करने को बाध्य होना पड़ता है। जिस समय प्रभु यीशु को यरूशलेम शहर के बाहर क्रूस पर चढ़ाया गया था, शहर के अन्दर मन्दिर में धार्मिक अगुवे और याजक परमेश्वर की आराधना कर रहे थे। द्वार के बाहर उन्होंने परमेश्वर के पुत्र को क्रूस पर चढ़ाया था और अन्दर अपने अन्धेपन खोखली प्रथाओं का पालन इस विश्वास से कर रहे थे कि परमेश्वर उनसे प्रसन्न है। किन्तु प्रभु यीशु मसीह अपने जीवन और अपने मरण दोनों में सब धार्मिक रीतिरिवाजों से बाहर थे और उसी प्रकार उसके शिष्य भी होंगे (यूहन्ना 16:2)। आधुनिक समय में लौदीकिया की कलीसिया के सदृश्य अनेक नाममात्र की कलीसियाएँ हैं, जिनकी परिस्थिति उन्हीं यहूदियों के समान है। वे सब कुछ ठीक है समझकर अपने कार्य में लगे हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रभु स्वयं उनके गिरजों के दरवाजों के बाहर है (प्रका॰ 3:14–20)।

अमेरिका देश के एक नीग्रों व्यक्ति की कहानी है जिसने हाल ही में प्रभु यीशु को स्वीकार किया था। वह अमेरिका के दक्षिणी प्रदेश में किसी शहर के आराधनालय में गया। उसे यह ज्ञात नहीं था कि मसीही कलीसिया में भी रंग भेद नीति है और यह गिरजाघर सिर्फ गोरों के लिए था। उसके आश्चर्य की सीमा न रही जब गिरजे के मार्ग दर्शकों ने उसे प्रवेश करने नहीं दिया। वह निराशा से लौट गया। उसने यह बात प्रार्थना में प्रभु को बताई। प्रभु का उत्तर था (कहानी इसी प्रकार है) "मेरे पुत्र, चिन्ता न करो, जब से इस गिरजाघर का निमार्ण हुआ, तब से मैंने भी कई बार इसमें प्रवेश करने का प्रयास किया है। मैंने आज तक सफलता नहीं पाई है। अतः यदि तुम्हें भी वापिस लौटा दिया गया, तो आश्चर्य न करो।" जब धार्मिक नियमाचार अथवा कलीसिया की प्रथाओं को परमेश्वर के वचन की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है, तथी इसी प्रकार का सामाजिक वर्ग भेद उत्पन्न होना है। जो मसीही क्रूस उठाकर मसीह का अनुकरण करता है वह स्वयं को आत्मा में उस मसीही धर्म से अलग पाएगा, जिसमें ऐसे सांसारिक तत्वों की प्रधानता रहती है। इस प्रकार का अलग होना दुःखद और कठिन होता है, किन्तु क्रूस का मार्ग कभी सहज नहीं होता।

आज मसीही कलीसियाओं में यह बातचीत का विषय है कि संसार की समस्त मण्डलियाँ एक हों। परिणाम-स्वरूप अनेक लोग अलगाव का प्रचार करने से डरते हैं यह सोचकर कि मण्डली के लोग उन्हें मसीह के विपरीत स्वभाव का समझेंगे। अतः हमारे लिए लूका 12:51, 52 के अनुसार मसीह के शब्दों को स्मरण रखना उचित है। ऐसा न हो कि मसीह की समानता वास्तव में क्या है, इसका असंतुलित चित्रण हम अंकित करें। वहाँ प्रभु यीशु ने विशेष जोर देते हुए कहा कि अलग करने के लिए आया है। हाँ अवश्य, ऐसी एकता भी है जो पूर्णतः बाइबल के अनुसार है। यह ऐसी एकता है जिसके विषय यूहन्ना 17 में प्रभु यीशु ने कहा। यह ऐसी एकता जो परमेश्वर पिता और परमेश्वर पुत्र के मध्य ("हममें" पद 21) विद्यमान है। यह भी महत्वपूर्ण है कि इसी अध्याय में प्रभु यीशु ने अलग दृढ़ता से अलग होने के विषय भी कहा (पद 16) इसी एकता का वर्णन इफिसियों 4:3 में भी है जो पवित्र आत्मा द्वारा लाई जाती है। यह एक बात हैं, और मनुष्यों द्वारा बनाई गई एकता सर्वथा दूसरी। मनुष्य द्वारा बनाई गई एकता का भविष्य उससे अच्छा नहीं, जो बाबुल के गुम्म्ट बनाते समय दिखाई दी थी (उत्पत्ति 11:1-9)।

संसार से अलग होना वास्तव में नये नियम का प्रमुख विषय है। क्रूस पर जाने के पूर्व प्रभु यीशु ने अपने शिष्यों को बताया कि वे संसार के नहीं हैं।

प्रभु यीशु स्वयं "इस संसार का नहीं" था परन्तु उसने दृढ़ता से कहा कि उसके शिष्य भी दूसरे संसार के हैं। उसने उन्हें बताया कि इस संसार के न होने के कारण उन्हें यह संसार रहने के लिए एक कठिन स्थान प्रतीत होगा (यूहन्ना 15:19; 17:16)। तौभी यह शिष्य का उत्तरदायित्व है कि स्वयं को संसार से निष्कलंक रखे (याकूब 1:27)। क्योंकि कलीसिया मसीह की दुल्हिन है जिससे वह प्रेम करता है तथा जिसे उसने जीता और और शुद्ध किया है (इफि॰ 5:25-27)। इसीलिए कुरिन्थुस के विश्वासियों के लिए पौलुस को "ईश्वरीय धुन" थी। पौलुस ने कहा कि उसकी इच्छा थी कि उन्हें पवित्र कुंवारी के समान मसीह को सौंप दे। उसे भय था कि कहीं वे शैतान द्वारा भ्रष्ट न किये जाएं (2 कुरि॰ 11:2-3)। इसीलिए याकूब ने संसार से मित्रता करने वालों को कठोर शब्दों में "हे व्यभिचारिणियों" करके सम्बोधित किया (4:4)। हाँ, बाइबल में अलगाव के विषय बहुत कुछ वर्णन है।

किन्तु हमें यह बात स्पष्ट ध्यान रखनी चाहिए कि बाइबल में अलगाव का अर्थ दूरी से नहीं है। यह अलगाव बाह्य नहीं किन्तु हृदय का है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि शारीरिक रीति से संसार के लोगों से अलग रहा जाए। अनेक लोगों का यह विचार रहा है कि वे किसी सुनसान स्थान में साधु सन्यासियों के समान रहने और संसार के लोगों से कोई सम्पर्क न रखने से, परमेश्वर के निकट पहुँच सकते हैं। मठ में स्वयं को अलग रखने वाले भिक्षु और "कान्वेन्ट की चहारदीवारी के अन्दर रहने वाली "नन" ने बाइबल की शिक्षानुसार अलगाव का तात्पर्य नहीं समझा है। न ही अलगाव का अर्थ श्वेत, केसरिया रंग के वस्त्रों को पहनने अथवा किसी विशिष्ट आदत अनुसार आचरण करने से है। प्रभु यीशु ने न ही कभी इसकी शिक्षा दी और न स्वयं इसका पालन किया। उसने यही शिक्षा दी कि इस संसार के मध्य रहते हुए भी, हमारी आत्मा इस संसार की आत्मा से स्वतन्त्र रहे। उसने इसी शिक्षा का पालन भी किया।

हम विदेशी तत्वों से घिरे हुए मनुष्य हैं। समुद्र के मध्य जहाज जल से घिरा होता है तौभी सागर का पानी जहाज में किंचित मात्र भी प्रवेश नहीं करता। यदि कोई विश्वासी इस प्रकार का जीवन बिताए तो उसे कभी न कभी उपहास और विरोध का सामना करना ही पड़ेगा। शीघ्र ही संसार उसके लिए दु:खदाई स्थल बन जाएगा। यीशु ने अपने शिष्यों को पूर्व चितौनी दी कि उसका अनुसरण करने का अवश्यंभावी परिणाम क्लेश भोगना होगा (यूहन्ना 16:33)। यदि मसीही स्वर्ग का है तो स्पष्टत: संसार उसका नहीं। वह जल बिन मीन है और यदि यहाँ जीवित रहना उसे कठिन जान पड़े तो उसे आश्चर्य करने की कोई

जरूरत नहीं। मछली को भूमि पर जीवित रखने के लिए आश्चर्यकर्म आवश्यक होगा और मसीह की वास्तविक कलीसिया को भी इस पृथ्वी पर जीवित रहने के लिए आश्चर्यकर्म से कम की आवश्यकता नहीं होगी। किन्तु यथार्थतः मसीही जीवन के लिए परमेश्वर का यही अभिप्राय है—उसकी आश्चर्यकर्म करने वाली शक्ति पर प्रतिदिन निर्भर रहने वाला जीवन।

परमेश्वर अपने लोगों और इस संसार की आत्मा के मध्य एक खाई देखना चाहता है, जो इतनी गहरी तथा चौड़ी हो जितना स्वर्गलोक और अधोलक के मध्य का अन्तर (लूका 13:26), तथा जिसे कभी पार न किया जा सके। परमेश्वर अपने लोगों के लिए सदैव विश्वासियों को दुर्भाग्यवश यह पाठ अब भी सीखना है। इसे सीखे बिना विश्वासी शक्तिहीन और निराश बना रहता है।

आत्मा की ऐसी ही स्वतन्त्रता को एक बार सीख लेने पर इब्राहीम का जीवन सामर्थी तथा फलदायक बना। उत्पत्ति 22 में इसका स्पष्ट चित्रण है। वहाँ परमेश्वर ने इब्राहीम से उसके एकमात्र पुत्र का बलिदान चाहा। इसलिए नहीं कि वह इसहाक की मृत्यु चाहता था (जैसा पद 12 से स्पष्ट है) किन्तु वह लड़के के प्रति अतिशय प्रेम से इब्राहीम को विमुक्त कराना चाहता था। यहाँ इस बात का ध्यान है कि इब्राहीम परमेश्वर का उपयोगी सेवक बने। परमेश्वर चाहता था कि इसहाक के प्रति इब्राहीम के व्यवहार में स्वार्थपूर्ण अपना लेने की भावना न हो। वह चाहता था कि इब्राहीम सदैव स्मरण रखे—इसहाक परमेश्वर की ओर से प्रदत्त वरदान है।

परमेश्वर जब हमसे किसी अत्याधिक प्रिय सांसारिक सम्पत्ति अथवा अन्य वस्तु को ले लेता या दूर करता है, तो वह भी हमसे इब्राहीम के सदृश्य व्यवहार करता है। इससे हम समझ सकते हैं कि यीशु ने धनी नौजवान को उसकी सम्पत्ति बेचने के लिए क्यों कहा। उसे अपने धन से अत्याधिक लगाव था। सांसारिक वस्तुएँ स्वयं में पापमय नहीं हैं। वे तभी पापमय बनती हैं जब प्रभु यीशु का अनुसरण करने में बाधक होती हैं। यही कारण है कि प्रभु हमारे परिवार में बीमारी अथवा मृत्यु को आने देता है, ताकि हमारे प्रेमी जनों के लिए हमारा अतिशय अनुराग कम हो (लूका 14:26, 27 से तुलना किजिए)। सच्चा अलगाव यही है कि हम अपनी वस्तुओं को इस प्रकार रखें, मानों वे हमारी नहीं अपितु प्रभु की हैं, तथा हमें उसकी महिमा करने के लिए दी गई हैं।

सम्भव है कि स्वयं को परमेश्वर की सन्तान समझें। किन्तु जब तक हम मसीह के क्रूस तथा उसमें निहित त्याग को स्वीकार न करें, तब तक परमेश्वर के अभिप्रायानुसार उसके पुत्र और पुत्रियों को प्राप्त अधिकारों का आनन्द नहीं

ले सकते (2 कुरि॰ 6:14-18)। भाइयों और बहनों, वह धन कल्पनातीत है जिसे परमेश्वर हमें देना चाहता है। हमने इस धन को अभी तक प्राप्त नहीं किया है, तथा परमेश्वर ने भी हमें दिया है, क्योंकि हमारे हृदय विचलित हैं तथा हमारे हाथ इस संसार तथा उसकी वस्तुओं को जकड़े हुए हैं।

क्रूस का अर्थ मृत्यु

यदि हम मसीह के क्रूस को वास्तव में स्वीकार करें जिसके विषय उसने अपने शिष्यों से कहा, तो उसका तात्पर्य हमारे लिए मृत्यु है। जब गेहूँ का दाना भूमि में गिरता है, पैरों तले रौंदा जाता है और अन्ततः उसका चमकीला ऊपरी हिस्सा निकल जाता है, तब वह सुन्दर नहीं रह जाता ठीक इसी तरह जो विश्वासी क्रूस उठाकर प्रभु यीशु का अनुसरण करता है, वह संसार के लिए आकर्षक नहीं रह जाता। संसार उसे तुच्छ जानता है। सम्भव है कि लोगों ने पहले उसके जीवन में कई बातों की प्रशंसा की हो, किन्तु अब नहीं। अपने प्रभु के समान वह मनुष्यों द्वारा त्यागा हुआ तथा तुच्छ जाना जाता है।

जिस प्रकार पुराने नियम के युग में वेदी पर रखे बलिदान को अग्नि भस्म कर राख कर देती थी, उसी प्रकार मसीह का क्रूस भी मानव की मृत्यु लाता है। प्रभु के लिए वास्तविक समर्पण का सदैव यही अर्थ रहता है। परमेश्वर की अग्नि प्रत्येक समर्पित जीवन को इस प्रकार भस्म करेगी कि वह संसार तथा स्वयं के लिए कदापि नहीं, किन्तु सिर्फ प्रभु के लिए ही जीवन व्यतीत कर सकेगा। वह इस संसार के लिए, तथा संसार उसके लिए मृतक रहेगा (गल॰ 6:14)। आधुनिक युग में मसीहियों के मध्य दिखावटी समर्पण इतना अधिक प्रचलित है कि वे इन बातों की अवहेलना करते हैं। किन्तु उद्धारकर्ता का यह कथन था कि वह "अपना क्रूस उठाए हुए मेरे पीछे हो ले"– यही एकमात्र समर्पण है जो परमेश्वर को ग्रहणयोग्य नहीं करता था, जब तक वह वेदी पर अग्नि द्वारा भस्म नहीं हो जाता था। हमने परमेश्वर की आशिष ग्रहण करने के लिए अनेक बार स्वयं का समर्पण किया होगा, किन्तु क्या कभी हमने इस प्रकार की मृत्यु के लिए स्वयं को समर्पित किया है? क्या हमने परमेश्वर को अनुमति दी है कि वह स्वेच्छा से हमसे जो चाहे, ले ले; हमारी बनाई हुई योजनाओं और महत्वाकाँक्षाओं पर पानी फेर दे? यही क्रूस का अर्थ है।

यह वास्तव में विस्मय का विषय है कि मसीही प्रभु यीशु का अनुसरण करने की बात कहते हैं। तथा साथ ही साथ उस संसार द्वारा ग्रहणयोग्य एवं लोकप्रिय बनने का प्रयास करते हैं जिसने मसीह को त्यागा और क्रूस पर चढ़ाया। उनका मसीही धर्म सिर्फ दिखावटी है। संसार द्वारा अथवा मसीहियों के

मध्य स्वीकृति एवं लोकप्रियता प्राप्त करना, परमेश्वर की आशिष का सूचक नहीं है। किन्तु इसके विरूद्ध ये ऐसी बातें है जिनकी चितौनी स्वयं मसीह ने सतत दी (लूका 6:26)। उसे परवाह न थी कि संसार उसे स्वीकार करे अथवा अस्वीकार, क्योंकि क्रूस पर जाने से बहुत पूर्व उसकी आत्मा इस संसार के प्रति मर चुकी थी। वह अपयश प्राप्ति का कोई कार्य नहीं करता था किन्तु यदि अपने पिता की इच्छा पूर्ण करने से उसे यही प्राप्त होता, तो इससे वह तनिक व्यग्र न होता।

प्रभु के अनुगामी में भी यही आत्मा होनी चाहिए। यही कारण था कि पौलुस ने स्वयं को "मसीह के लिए मूर्ख" कहा (1 कुरि॰ 4:10)। यह किसी महान उपाधि को प्राप्त करने से बढ़कर वाँछनीय है। पौलुस जहाँ कहीं गया, वहाँ लोग ऐसे थे जिन्होंने उसे मूर्ख समझकर तुच्छ जाना। किन्तु वह कुछ से विचलित न हुआ। अपने स्वामी के सदृश्य वह इस संसार के प्रति मृतक था।

किसी नगर में एक व्यक्ति था जो अपनी देह में विज्ञापन पत्र लटका कर प्रभु की साक्षी दिया करता था। इन पत्रों पर बाइबल के पद लिखे होते थे। पश्चिमी देशों में उन्हें "सैन्डविच बोर्ड" कहा जाता है। परिणाम यह हुआ कि उसे नगरवासियों के उपहास का निशाना बनना पड़ा। एक दिन बाहर निकलते समय उसने सामने के विज्ञापन पत्र पर ये शब्द लिखे थे, "मैं मसीह के लिए मूर्ख हूँ" तथा पीछे की और, "आप किसके मूर्ख हैं?"

भाईयो और बहिनो! क्या हम यह समझते हैं कि यदि हम मसीह के लिए मूर्ख बनने को तैयार नहीं, तो शैतान के लिए मूर्ख बनेंगे ही, चाहे मानें या न मानें? क्रूस को स्वीकार करने का अर्थ है–संसार के प्रति मृतक अवस्था को स्वीकार करना। संसार प्रशंसा करे अथवा आलोचना–इस बात की लेशमात्र भी परवाह न हो। अनेक नवयुवकों में इसी "एक बात की घटी" रहती है, जिससे प्रभु के लिए महत्वपूर्ण सेवकाई में बहुधा अवरोध उत्पन्न होता है। इसी एक बात की होने से हमारी सभी शैक्षणिक योग्यताएं तथा हमारे बरदान प्रभु की सेवा के लिए व्यर्थ सिद्ध होंगे।

क्रूस का अर्थ सिर्फ संसार के लिए मृतक बनना ही नहीं है। इसका अर्थ स्वयं की इच्छाओं के लिए भी मरना है। अब तक हमने जितनी बातों पर विचार किया है, यह उनसे अधिक कठिन है, क्योंकि इसका अर्थ है कि हम स्वयं का नहीं किन्तु परमेश्वर का मार्ग चाहते हैं। इसका यह अर्थ भी है कि हम स्वयं के अधिकारों पर अड़े नहीं रहते। जब दूसरे हमें चोट पहूँचाएं। तब हम बदला लेने की आकाँक्षा नहीं करते, पहाड़ी उपदेश में मसीह ने शिष्यों के समक्ष

जीवन का यही आदर्श रखा (मत्ती 5, 6 और 7)। यह उस प्रकार के जीवन से कितना भिन्न है जिसे हम प्रतिदिन अपने चारों ओर देखते हैं—न सिर्फ अविश्वासियों में, किन्तु अनेक विश्वासियों में भी। यह कितनी दु:खद बात है! प्रभु यीशु द्वारा इन अध्यायों में रखे गए स्तरों पर दृष्टि कर अनेक लोगों ने कहा है कि इसके अनुकूल जीवन व्यतीत करना अत्यन्त कठिन है। यह अत्यन्त कठिन ही नहीं; असम्भव है! यह उस समय तक असम्भव है जब तक हम स्वयं के दैनिक जीवन में क्रूस उठाने को तैयार न हों। किन्तु जब हमारा जीवन मसीह के प्रभुत्व को समर्पित होगा, हम सहर्ष प्रतिशोध से दूर रहेंगे। मनुष्य चाहे हमसे कैसा भी व्यवहार करे, हम उसे प्रभु की ओर से समझ कर दीनता पूर्वक सहेंगे।

दु:ख उठाते समय प्रभु यीशु का यही दृष्टिकोण था। वह एक शब्द कहकर ही 72,000 स्वर्गदूत को अपनी सहायतार्थ बुला लेता, किन्तु तौभी उसने ऐसा करना अस्वीकार किया। उस पर झूठा दोष लगाया गया। उसे अपमानित कर मारा तथा क्रूस पर टाँगा गया। तौभी उसने दीनता पूर्वक यह सब सहा, यह समझकर कि परमेश्वर ने ही इनकी अनुमति दी है। दु:ख उठाने के समय उससे कीड़े सदृश्य व्यवहार किया गया (भजन 22:6) उसका तिरस्कार किया गया तथा पांवों तले रौंदा गया। कीड़े तथा सर्प के बीच यही अन्तर है कि सर्प को पाँव से रौंदें तो वह उलटे काटेगा और कीड़े को चाहे रौंदें या कुचलें वह कभी प्रतिकार नहीं करेगा। एक में शैतान की आत्मा तथा दूसरे में परमेश्वर के पुत्र की आत्मा दृष्टिगोचर होती है। लोगों द्वारा हानि, अपमान अथवा अधिकारों पर कुठराघात सहने पर हमारा व्यवहार इन्हीं दोनों में से किसी एक प्रकार का होगा। अब तक हमने किस प्रकार का प्रत्युत्तर दिया है?

क्या आपको अशिष्टता पूर्वक अत्याधिक अपमानित होना पड़ा है? क्रूस को यदि आप स्वीकार करें तो उसका अर्थ है कि यदि आप पर कोई दोषारोपण करें, तो आप पवित्र आत्मा को अपनी जीभ पर लगाम लगाने दें। जिस आवाज में उसने कहा उसी आवाज़ में आप न बोलें। आप पवित्र आत्मा को अपने हाथ बाँधने दें ताकि कटु उत्तर न लिख भेंजे अपना हृदय पिघलाने दें ताकि घृणा के बदले प्रेम स्राप के बदले आशिष दें और कठोरता के बदले कोमलता दर्शा सकें। ऐसी परिस्थिति में आपके मित्र तथा स्वयं आपका चोट खाया हुआ मनुष्यत्व कहेगा कि आप लज्जा और अपमान का घूंट न पीएं तथा प्रतिशोघ लें। किन्तु पवित्र आत्मा क्रूस का मार्ग दर्शाकर कहेगा, "नहीं, कुछ न कीजिए। कुछ न कीजिए।" किन्तु मुझे ही उस व्यक्ति को तुम्हारे द्वारा द्रवित करने दीजिए।

आप किसकी वाणी सुनेंगे? जब तक आप इस पापपूर्ण संसार में रहेंगे, तब तक प्रतिदिन, बहुधा दिन में अनेक बार इन परिस्थितियों का सामना करेंगे।

अनेक बार विश्वासी ही आपको क्रुद्ध करेंगे। स्मरण कीजिए कि प्रत्येक परिस्थिति में आपके समक्ष दो मार्ग होंगे। या तो आप स्वेच्छा से स्वर्ग की मृत्यु स्वीकार करेंगे, अथवा आप पुनः प्रभु को क्रूस पर चढ़ाएंगे। संसार प्रभु को पुनः क्रूस पर नहीं चढ़ा सकता, किन्तु एक अर्थ में विश्वासी ऐसा कर सकते है (इब्रानियों 6:6)। हम ऐसा तभी करते हैं जब क्रूस को अपने जीवन में अस्वीकार करते हैं। इन परिस्थितियों में क्रूस का मार्ग नहीं अपनाते तो हमारे आत्मिक जीवन पर आघात पहुँचता है। आप क्रूस को स्वीकार कर देखिए कि न सिर्फ आपका ही हृदय हर्ष से परिपूर्ण होता है, किन्तु आत्मिक फलवन्त जीवन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

मैंने जो पहले कहा उसे पुनः दोहराता हूँ कि इस प्रकार क्रूस को स्वीकार करने का अर्थ होता है कि हम अपना नहीं किन्तु प्रभु का ही मार्ग चाहते हैं। गतसमने में मसीह की इस प्रार्थना का यही आशय था, "जैसे मैं चाहता हूँ वैसा नहीं, पर जो तू चाहता है वही हो।" पौलुस ने मसीह के साथ हमारा सम्बन्ध दर्शाने के लिए वैवाहिक सम्बन्ध का उदाहरण दिया, "जैसे कलीसिया मसीह के आधीन रहें" (इफिसियों 5:24)। यहाँ आधीनता का क्या अर्थ है? वस्तुतः यही कि हम अपनी इच्छाओं को क्रूस पर चढ़ाए, ताकि आगे उसी की इच्छा पूर्ण कर सकें। क्रूस पर जाते समय मसीह में यही आत्मा थी। इसी आत्मा के कारण उसने अन्धकार की शक्तियों को हटाया।

मसीह में भाइयों और बहिनों, क्या आपने अपना सर्मपण इस प्रकार किया है कि सिर्फ आप उसी की इच्छा अभिलाषी हैं, चाहे इसके लिए आपको बार-बार अपनी इच्छा का दमन क्यों न करना पड़े? जो परमेश्वर की इच्छा पूर्ण करने का प्रयत्न करते हैं, उनके मार्ग में क्रूस सदैव बना रहता है।

जिस प्रकार मृत्यु द्वारा मनुष्य एक से दूसरे लोक में पहुँच जाता है, उसी प्रकार क्रूस की स्वीकृति द्वारा विश्वासी परमेश्वर के राज्य में पहुँच जाते हैं (कुलु॰ 1:13)। इस संसार के प्रति उसका दृष्टिकोण एकदम परिवर्तित हो जाता है। उसकी दृष्टि में अन्य बातों का महत्व बढ़ जाता है। धन, साँसारिक सम्पदा, लोग, सभी क्रूस के प्रकाश में, अनन्त के प्रकाश में एवं मसीह के राज्य के प्रकाश में देखे जाते हैं। लोगों को वह धनी-दरिद्र, अथवा बड़े-छोटे या सामाजिक स्तरों की दृष्टि से नहीं देखता। उसकी दृष्टि में ये लोग ऐसी आत्माएँ हैं जिनके लिए मसीह मरा (2 कुरि॰ 5:16)।

ऐसे व्यक्ति के लिए, पैसों और साँसारिक वस्तुओं में उनका प्राचीन आकर्षण नहीं रह जाता। उसी दृष्टि में अनन्तकाल की वस्तुओं की आशा बढ़

जाती है। वह संसार तथा उसकी समस्त वस्तुओं को क्षणिक और परमेश्वर द्वारा दण्ड का भागी समझता है। वह अब परमेश्वर की इच्छा पूर्ति करने तथा स्वर्ग में धन संचय करने को ही जीता है (1 यूहन्ना 2:17; 1 पतरस 4:1–3)। यह अत्यन्त खेदजनक होता है जब परमेश्वर की सन्तान अविश्वासियों के सदृश्य सांसारिक दृष्टिकोण से, लोगों और सांसारिक वस्तुओं को देखती है। वह व्यक्ति प्रभु यीशु मसीह के क्रूस के वास्तविक अर्थ से सर्वदा अनभिज्ञ है।

क्या आप स्वयं को जाँचने का कष्ट करेंगे। क्या आप अपनी कमियों को जानने के लिए चिन्तित रहते हैं? आपको सिर्फ मत्ती, अध्याय 5, 6 और 7 पढ़कर विश्वासयोग्य से पूछने की आवश्यकता है कि मसीह की इन आज्ञाओं में से कितनी आज्ञाओं का पालन करने की आपने जरूरत ही नहीं समझी।

क्रूस विजयी बनाता है

क्या जितना हमने कहा, वह आपको नीरस प्रतीत होता है? क्रूस के सन्देश का कान्तियुक्त पक्ष–सकारत्मक पहलू भी हैं। अर्थात् यह कि क्रूस स्वयं में ही साध्य नहीं है। वह पुनरुत्थान का पथ है। वस्तुतः पुर्नजीवन का यह एकमात्र मार्ग है। उन सब के समक्ष वह आनन्द है जो क्रूस के कार्य को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं (इब्रानियों 12:2)। गेहूँ का दाना भूमि में पड़कर मरता है परन्तु सदैव वही नहीं पड़ा रहता; वह बहुतायत से फल लाता है। क्रूस के मार्ग को ग्रहण करने वाला विश्वासी भी अन्ततः परमेश्वर द्वारा निर्दोष सिद्ध होगा, चाहे उसे मनुष्यों ने कितना भी गलत क्यों न समझा हो। उसकी मृत्यु द्वारा भी फल दिखाई देता है। इनमें से कुछ फल तो इसी संसार में दृष्टिगोचर होता है, किन्तु सभी अपनी पूर्णता में उस समय दिखाई देगा, जब मसीही न्यायासन पर बैठेगा। तब प्रभु उन्हें पुरस्कृत करेगा।

यूसुफ का जीवन इसका अद्‌भुत उदाहरण है। जिन भाइयों से उसे अनुराग था, उन्हीं के द्वारा बेचा जाना तथा अपरिचित देश में गुलाम की नाई पहुँचना उसके लिए दुखद अनुभव था। पोतीपर के घर में रहते हुए उसने कभी अभियोग नहीं लगाया और ईमानदारी से अपना कार्य करता रहा। जब पोतीपर की पत्नी ने उस पर दोषारोपण किया, तब भी वह परमेश्वर के प्रति विश्वासयोग्य बना रहा। कारावास में भी उसने कोई शिकायत नहीं की। उसने अपनी परिस्थिति को परमेश्वर की ओर से समझकर ग्रहण किया और किसी के प्रति कड़वाहट नहीं रखी। फिरौन का कृतघ्न पिलानेहारा भी उसे भूल चुका था, तौभी यूसुफ ने परमेश्वर या मनुष्य के प्रति कोई बुरी भावना मन में न रखी। इन सबका परिणाम यह निकला कि यूसुफ मिस्त्र का प्रधानमंत्री बन बैठा था।

परमेश्वर उनका सम्मान करता है। जो उसे सम्मान देते हैं (1 शमूएल 2:30)। उसने उस समय ऐसा किया तथा आज भी ऐसा ही करता है। सम्भव है कि यूसुफ के समान सांसारिक दृष्टि से जन सम्मान न प्राप्त हो, तौभी परमेश्वर का सम्मान अवश्य प्राप्त होता है। क्रूस के मार्ग से विलग हो हम कितना चूक जाते हैं।

किन्तु कहानी समाप्त नहीं हो जाती। यूसुफ सर्वोच्च पद पर पहुँच गया। उसे मिस्र की सब शक्ति प्राप्त थी, तौभी उसने पोतीपर की पत्नी से और न अपने भाइयों से ही बदला लिया, अपितु उन्हें क्षमा किया। अनेक विश्वासियों ने आरम्भ में यूसुफ के सदृश्य जीवन व्यतीत किया है। प्रत्येक कदम पर क्रूस के दुखों को उठाया हैं। किन्तु जब सफलता उनके कदम चूमने लगी और परमेश्वर ने उनका सम्मान कर ऊँचा उठाया, तो वे अभिमानी हो गए। स्वार्थ एवं प्रतिशोध की लालसा उनमें उमड़ने लगी। यह कितनी भी शोचनीय स्थिति है!

यूसुफ ऐसा नहीं था। वह कारावास में अथवा राजगद्दी पर समान रूप से नम्र बना रहा। वह कितना सराहनीय व्यक्ति था। परमेश्वर इसी दृष्टिकोण को चाहता है और सहर्ष सम्मानित करता है। यदि उसके पुत्र की आत्मा हैं। जब वह आत्मा हममें नहीं होती तो वह कहता है कि हमारे जीवन में एक नितान्त आवश्यक बात की घटी है।

प्रभु यीशु ने अपने आचर्श्य-कर्मों या अपने संदेशों द्वारा शैतान को नहीं हराया इब्रानियों 2:14 के अनुसार उसने अपनी मृत्यु द्वारा ही शैतान को अशक्त किया। यदि स्वयं प्रभु ने शैतान को अपनी मृत्यु द्वारा पराजित किया, तो उसके शिष्य उसे अन्य किसी उपाय के पराजित नहीं कर सकते। कई लोगों का विचार होता है कि यदि सिर्फ वे मसीह के नाम से कुछ आश्चर्यकर्म कर सकते तो शैतान की हार आवश्यम्भावी है। किन्तु शैतान भी मसीह के क्रूस की अपेक्षा किसी अन्य हाथियार के समक्ष नहीं झुका है। विश्वासी जब अपने जीवन में क्रूस के मार्ग के सिवाय किसी दूसरे मार्ग को अपनाने का दृढ़तापूर्वक अवरोध करता है, तो शैतान उससे निर्बल हो जाता है। बाइबल में उसी व्यक्ति को शैतान का सामना करने की आज्ञा दी गई है, जो सहर्ष पूर्णरूपेण अपने जीवन में परमेश्वर को कार्य करने देता है। उस व्यक्ति को ज्ञात होगा कि शैतान उसके सम्मुख से दूर भाग गया है (याकूब 4:7)। यदि हमने परमेश्वर को सर्व प्रथम अपना समर्पण नहीं किया है, तो शैतान का सामना करना सर्वथा मूर्खता होगी।

विजय का एकमात्र पथ क्रूस का मार्ग है। यही कारण था कि शैतान ने उस पथ पर मसीह को जाने से रोकने की भरसक चेष्टा की। इसीलिए शैतान भी अथक प्रयास में है कि लोगों की उनके जीवनों में इस राह को स्वीकार

करने से रोके। परतस ने अच्छे अभिप्राय से प्रेम के साथ प्रयत्न किया था कि मसीह को क्रूस के दु:ख की ओर जाने से रोके, किन्तु प्रभु ने एक-दम उसमें शैतान का स्वर पहचाना (मत्ती 16:21-23)। जब हमारा मार्ग दुर्गम हो, जब हमारे मित्र और सम्बन्धी भी हमें ऐसी ही सलाह दे सकते हैं। स्मरण रखिए यदि वह स्वर हमारे अन्त:करण का हो अथवा मित्रों का जो हमें क्रूस के पथ से विचलित करे, तो वह सदैव शैतान की मर्मर ध्वनि है। क्या हम सदैव उसे इस प्रकार पहचानते हैं?

प्रकाशितवाक्य में हम मसीह यीशु के वध किए हुए मेम्ने के सदृश्य देखते हैं। यहाँ कलवरी का स्वर्गीय दृष्टिकोण है। मानव की दृष्टि में कलवरी एक पराजय थी। इसका कोई उल्लेख नहीं कि किसी अविश्वासी ने मसीह को उसके पुनरुत्थान के उपरान्त देखा हो, तात्पर्य यह कि कलवरी को मनुष्य ने हार की ही दृष्टि से देखा। किन्तु स्वर्ग के दृष्टिकोण से पृथ्वी पर की समस्त विजयों में कलवरी सर्वश्रेष्ठ जीत थी। संसार में उन्होंने परमेश्वर के मेम्ने को क्रूस पर चढ़ाया परन्तु स्वर्ग में उन्होंने उसकी आराधना की। जब मसीह का अनुसरण करने में आपको अपना अधिकार त्यागना पड़े, तब संसार के मनुष्य कह सकते हैं—आपमें दम ही नहीं है। किन्तु स्वर्ग में ऐसी जीत के उपलक्ष में परमेश्वर की सन्तान के लिए आनन्द मनाया जाता है। "वे...उस (शैतान) पर जयवन्त हुए, और उन्होंने अपने प्राणों को प्रिय न जाना; यहाँ तक कि मृत्यु (क्रूस की) भी सह ली। इस कारण, हे स्वर्गो...मगन हो" (प्रका॰ 12:11, 12)।

भजन संहिता 124:7 में मसीही जीवन के चित्रण के लिए उस पक्षी का प्रतीक दिया गया है, जो बहेलिए के जाल से बचा हो। आकाश में उड़ता पक्षी उस स्वतन्त्रता का सिद्ध चित्रण है, जिसके अनुभव की आकाँक्षा परमेश्वर अपनी सन्तानों के लिए करता है। भूमि पर रहने वाले जीव जन्तुओं के मार्ग में पर्वत और नदियाँ रुकावट डाल सकती हैं किन्तु पक्षियों के मार्ग में नहीं। वह तो सबसे ऊँचा उड़ता है। परमेश्वर ने मानव की सृष्टि इस पृथ्वी के सदृश्य स्वच्छन्द होने, सब वस्तुओं पर सर्वोपरि होने तथा समस्त वस्तुओं को अधीनस्थ रखने के लिए की (उत्पत्ति 1:28)। किन्तु मनुष्य की अनाज्ञाकारिता ने उसे उड़ने में असमर्थ, जाल में फंसे पक्षी की तरह बनाया है।

सिर्फ क्रूस ही इस जाल को तोड़कर हमें मुक्त कर सकता है। कोई अन्य उपाय नहीं है। संसार तथा स्वत: की मृत्यु स्वीकार कीजिए और ऐसा करने से आप शैतान की शक्तियों के लिए भी मृतक हो जाएंगे। आप पर उसका बन्धन टूट जाएगा और पक्षी के सदृश्य उड़ान भरने से आपको कोई रोक नहीं सकेगा।

यही सच्ची स्वतन्त्रता है—इसी को हमारे जीवन में लाने के लिए पवित्र आत्मा यत्न करता है (2 कुरि॰ 3:17)। किन्तु इस स्वतन्त्रता का एकमात्र मार्ग, क्रूस ही का मार्ग है।

पहले के अध्यायों के समान, हम जिस अन्तिम युग में रहते हैं, उस पर भी यह सन्देश लागू होता है। 2 तीमुथियुस 3:1-8 में इन दिनों का उल्लेख है। यहाँ वर्णन है कि मनुष्य प्रमुखतः स्वतः के प्रेमी होंगे। परिणाम-स्वरूप उनके भाव में वे सभी बातें प्रदर्शित होंगी जो क्रूस की आत्मा के एकदम विपरीत हैं। अतः विस्मय की कोई बात नहीं कि मसीहियों के विरूद्ध सताव बढ़ने पर, अनेक ठोकर खाएंगे (मत्ती 24:9, 10)। अनेक मसीही ऐसे समय में अपने प्रभु से अलग हो जाएंगे, जो जीवन पर्यन्त दिखावटी मसीही कार्यों से सन्तुष्ट रहे है। कारण यह कि उनका मसीही जीवन उनकी सुविधानुसार है, मसीह के क्रूस की माँगों के अनुसार नहीं। मरकुस 4:17 के अनुसार प्रभु यीशु ने इन मसीहियों का वर्णन इस प्रकार किया, जिनकी कोई जड़ ही न हो। उनका मसीही धर्म सिर्फ दिखावटी था। परमेश्वर ने जब भी उनको जीवन में क्रूस को स्वीकार का अवसर दे उनकी जड़ मजबूत करना चाहा, उन्होंने सदैव अस्वीकार किया।

सिर्फ एक ही मार्ग है जो मसीह के जीवन तक मनुष्य को पहुँचा सकता है। हम चाहें तो अन्य मार्गों का अनुसरण कर सकते हैं, परन्तु किसी अन्य पथ पर हम कदापि परमेश्वर का अभिप्राय पूर्ण नहीं कर सकेंगे। अपने जीवनों में यदि हम क्रूस के मार्ग से अलग रहें तो हमारे सब वरदान व्यर्थ जाएंगे। हम इसे स्वीकार करें अथवा अस्वीकार—चुनाव पूर्णरूपेण हमारा ही है।

साधु सुन्दरसिंह कहा करते थे कि स्वर्ग पहुँचने पर हमें मसीह के लिए क्रूस उठाने का दूसरा अवसर सुलभ न होगा। हम अभी अस्वीकार कर सकते हैं, किन्तु अन्त में हमें कोई अवसर नहीं मिलेगा कि प्रभु यीशु के लहू बहाए गए पथ पर चल सकें। जब हम अपने प्रिय प्रभु से भेंट करेंगे, उस समय भी उसके हाथ पैर में कीलों के निशान होंगे। अपने सांसारिक जीवन पर पुनः दृष्टिपात कर, और यह जानकर क्या होगा कि हमने हर कदम पर क्रूस की अवहेलना की है? परमेश्वर यह वर दे कि हम प्रत्येक कदम पर उसके प्रति समर्पण करें, ताकि उस दिन हम हाथ मलते न रह जाएं।

"सर्वदा...मृत्यु के हाथ में सौंपे जाते है"...
"सदा हमको जय के उत्सव में लिए फिरता है।"
(2 कुरिन्थियों 4:11, 2:14)

5

केवल यह एक काम करता हूँ

"परन्तु जो बातें मेरे लाभ की थीं, उन्हीं को मैंने मसीह के कारण हानि समझ लिया है। वरन मैं अपने प्रभु मसीह यीशु की पहिचान की उत्तमता के कारण सब बातों को हानि समझता हूँ: जिसके कारण मैंने सब वस्तुओं की हानि उठाई, और उन्हें कूड़ा समझता हूँ, जिससे मैं मसीह को प्राप्त करूँ। और उसमें पाया जाऊँ; न कि अपनी उस धार्मिकता के साथ, जो व्यवस्था से है, वरन उस धार्मिकता के साथ जो मसीह पर विश्वास करने के कारण है, और परमेश्वर की ओर से विश्वास करने पर मिलती है। और मैं उसको और उसके मृत्युञ्जय की सामर्थ को, और उसके साथ दुखों में समानता को प्राप्त करूँ। ताकि मैं किसी भी रीति से मरे हुओं में से जी उठने के पद तक पहुँचू। यह मतलब नहीं कि मैं पा चुका हूँ, या सिद्ध कर चुका हूँ: पर उस पदार्थ को पकड़ने के लिए दौड़ा चला जाता हूँ, जिसके लिए मसीह यीशु ने मुझे पकड़ा था। हे भाइयों, मेरी भावना यह नहीं कि मैं पकड़ चुका हूँ उनको भूल कर, आगे की बातों की ओर बढ़ता हुआ निशाने की ओर दौड़ा चला जाता हूँ, ताकि वह इनाम पाऊँ, जिसके लिए परमेश्वर ने मुझे मसीह यीशु में ऊपर बुलाया है।" (फिलिप्पियों 3:7-14)

सर्वप्रथम हम स्मरण रखें कि प्रेरित के उक्त शब्द किसी जोशीले नवयुवक द्वारा नहीं लिखे गए, जिसने हाल ही में मसीही जीव में पग रखा हो। ये एक परिपक्व मसीही के साक्षी हैं जिसे उसने अपने उन्नत और समृद्धिशाली जीवन के अन्तिम दिनों में लिखा है। पौलुस के जीवन परिवर्तन हुए तीस वर्ष व्यतीत हो चुके थे। इन वर्षों में परमेश्वर ने उसका प्रयोग किया था कि वह अनेक कलीसियाओं की स्थापना करे तथा अपनी सेवकाई में आश्चर्यकर्म करे। आरम्भ

से ही पौलुस ने सुसमाचार के कार्य में स्वयं का जीवन न्यौछावर कर दिया था। उसने सुदूर क्षेत्रों की यात्राएँ की थीं तथा अनेक कठिनाइयों का सामना किया था। अपने प्रभु की समानता में बढ़ते हुए उसने पाप पर विजय की वास्तविकता को पहचाना था। उसके जीवन के सुखद एवं अनुपम अनुभवों में से यह एक था, जैसा उसने लिखा कि वह तीसरे आसमान तक उठा लिया गया ताकि आत्मिक सत्य का अद्भुत दर्शन पाए।

तौभी उसने अन्त में लिखा कि परमेश्वर का उसके जीवन के लिए जो अभिप्राय था, उसे उसने अब तक पूर्ण नहीं किया है। यहाँ हम सब युगों में महान मसीही के मुख से उसके जीवन के अन्तिम समय में यह कहते सुनते हैं कि उसे अभी भी उच्च निशाने की ओर बढ़ना है। दुःखद बात है कि अधिकाँश विश्वासियों के लिए उद्धार नये जन्म से आरम्भ होता है और वहीं समाप्त भी हो जाता है। उन्हें निश्चय होता है कि इतने से ही वे परमेश्वर के न्याय से बच जावेंगे। किन्तु प्रेरित पर यह बात लागू नहीं होती, न ही यह बात प्रभु यीशु के सच्चे शिष्य बनने का प्रयत्न करने वाले पर लागू होनी चाहिए। इस अध्याय में उसके दृढ़ विश्वास की घोषणा है कि मसीह ने उसे विशिष्ट अभिप्राय से पकड़ा है। वह भी प्रत्युत्तर में निश्चयबद्ध था कि किसी भी मूल्य पर उस अभिप्राय को पकड़े। यह एक महान और गम्भीर सत्य है कि परमेश्वर जब हमें नये जन्म के समय पकड़ता है तो उसका अभिप्राय व्यापक होता है। यह अभिप्राय सिर्फ इतना ही नहीं होता कि हमारी आत्मा नरक की अग्नि से बच कर स्वर्ग में प्रवेश पाए। यदि पौलुस प्रेरित जैसे परिपक्व व्यक्ति ने अपनी अथक मसीही सेवकाई के तीस वर्षों उपरान्त यह कहा कि वह नहीं पहुँच सका है, किन्तु अपने जीवन के लिए परमेश्वर के समस्त अभिप्रायों को उसे अभी भी पूर्ण करने का यत्न करना है, तो वह अभिप्राय कितना व्यापक होगा।

पौलुस इस अध्याय में इससे भी आगे कहता है। उसके समक्ष एक विशाल लक्ष्य है कि पह परमेश्वर के अभिप्राय को समझकर उसकी पूर्ति कर सके। इसकी तुलना में वह संसार की दृष्टि में अनमोन वस्तुओं को कूड़ा कर्कट समझता है। उसके लिए वह एक इनाम है जिसके लिए वह संसार की समस्त वस्तुओं को त्याग सकता है (पद 14)। हम अपने चारों और विश्वासियों को सांसारिक सम्पत्ति का उपभोग और लाभ करते, तथा जीवन में परमेश्वर की बातों से बढ़ कर इनको श्रेष्ठ स्थान देते देखते हैं। अतः यह कहने के लिए बाध्य होते हैं कि उनका मसीही धर्म पौलुस की अपेक्षा बहुत निम्न स्तर का है।

उद्धार को सिर्फ नरकाग्नि से बचाव के लिए जीवन बीमा सोचना, आत्मिक शैशवास्था का चिन्ह है। जब हम आत्मिक रूप से परिपक्व होते हैं,

तब अनुभव करते हैं कि परमेश्वर ने हमें इसलिए बचाया है कि अनन्तकाल से सुनियोजित परमेश्वर के पथ पर हम नित्य चल सकें (इफि॰ 2:10)। इसी मार्ग को पौलुस ने अपने जीवन के लिए परमेश्वर का अभिप्राय कहा। यदि हम उसके अनुग्रह को प्राप्त कर सन्तुष्ट हैं किन्तु अपने जीवन में उसकी इच्छा-पूर्ति के लिए तैयार नहीं हैं, तो चाहे हम बाइबल के सिद्धान्तों पर कितना भी विश्वास क्यों न करते हों, हम जीवन पर्यन्त परमेश्वर के लिए अनन्त महत्व का कोई कार्य नहीं कर सकेंगे। हाँ, शैतान का प्रथम लक्ष्य यही है कि किसी न किसी उपाय से, मसीह यीशु में परमेश्वर के अनुग्रह के प्रति लोगों को अन्धा करे, और इस प्रकार उन्हें उद्धार प्राप्ति से रोके (2 कुरि॰ 4:4)। किन्तु इसमें असफल रहने पर उसका अगला उद्देश्य यह हो जाता है कि नये विश्वासी को इस तथ्य के प्रति अन्धा करे कि उसके जीवन के लिए परमेश्वर की निश्चित योजना है। बृहत रूप से उसे इसमें सफलता मिली है। सहस्त्रों सच्चे विश्वासी ऐसे हैं, जो कभी लगन से अपने जीवन के बड़े निर्णयों में भी परमेश्वर की इच्छा जानने का प्रयत्न नहीं करते।

फिलिप्पियों के इस अध्याय में मसीही जीवन का चित्रण इस प्रकार किया गया है जिसमें हमें लगातार आगे बढ़ना हैं चाहे हम इस संसार में आत्मिक रूप से कितना भी परिपक्व क्यों न हों, तौभी हमारे लिए आवश्यक होगा कि हम निरन्तर आगे बढ़ते जाएं। इसी शिक्षा की उपेक्षा करने से अनेक विश्वासियों के जीवन कोई साक्षी नहीं है। उनकी साक्षी भूतकाल के किसी अनुभव तक ही सीमित है जिसमें उन्होंने किसी सभा में हाथ उठाया अथवा निर्णय पत्र पर हस्ताक्षर किया। यह अवश्य अनोखा अनुभव था, किन्तु उस दिन से आगे कुछ नहीं हुआ! नीतिवचन 24:30-34 में एक उजाड़ वाटिका की तस्वीर है। यह उस व्यक्ति की स्थिति का वर्णन है जो उद्धार के पश्चात निश्चिन्त हो गया हो। बाग के लिए आवश्यक है कि उसके निरर्थक घास व पौधों को उखाड़ कर उसकी सुरक्षा लगातार की जाए—मानव हृदय की भी यही जरूरत है।

मेरे विचार में जॉन वेसली ही वे व्यक्ति थे जिन्होंने प्रारम्भिक मेथोडिस्ट साक्षी सभाओं में यह नियम बनाया, कि वह व्यक्ति गवाही न दे जिसे नया जन्म पाए एक सप्ताह से कम हुआ हो। उस व्यक्ति को पीछे हटने वाला समझा जाता था, जो यह वर्णन करने में असमर्थ रहता था कि पिछले दिनों में परमेश्वर ने उससे क्या व्यवहार किया। हममें से कितने इस परीक्षा में खरे उतर सकते हैं? इस प्रकार की सभी में क्या हमको खिन्न चित्त शान्त बैठना पड़ेगा?

पद 13, 14 में पौलुस के शब्दों पर ध्यान दीजिए: "केवल यह एक काम करता हूँ, कि जो बातें पीछे रह गई हैं उनको भूलकर आगे की बातों की ओर

बढ़ता हुआ, निशाने की ओर दौड़ा चला जाता हूँ, ताकि वह इनाम पाऊँ, जिसके लिए परमेश्वर ने मुझे मसीह यीशु में ऊपर बुलाया है।" मसीही के लिए प्राथमिकताओं में से यह एक है। परमेश्वर के अभिप्राय को समझना तथा उसे पूर्ण करने के लिए आगे बढ़ना, आत्मिक सन्त की ही आवश्यकता नहीं है। यह तो परमेश्वर की प्रत्येक सच्ची सन्तान के जीवन की विशेषता होनी चाहिए।

एक बार फिर हम तीन दृष्टिकोणों से इस विषय पर विचार करेंगे। सर्वप्रथम उन बातों पर ध्यान देंगे, जो हमें परमेश्वर के अभिप्राय की ओर बढ़ने से रोकती हैं। तत्पाश्चात उस शक्ति पर ध्यान देंगे जो आगे बढ़ने में समर्थ करती है तथा अन्त में उस मनः स्थिति पर विचार करेंगे जिससे हम जीवन पर्यन्त आगे बढ़ सकेंगे।

अवरोधक बातें

परमेश्वर ने जब इस्राएलियों को मिस्त्र से छुटकारा दिया, तो उसने कनान की यात्रा के लिए जंगल में एक निश्चित मार्ग ठहराया था। इस्राएली सिर्फ आग और बादल के खम्भे का प्रतिदिन अनुसरण कर ही इस मार्ग को जान सकते थे। आज भी परमेश्वर ने अपने छुड़ाए हुए पुत्रों के लिए मार्ग निश्चित किया है। वे उसे तभी जान सकते हैं जब वे परमेश्वर के साथ प्रतिदिन चलते हैं। जिस अभिप्राय से परमेश्वर ने हमें पकड़ा है, उसे पूर्णतः समझने के लिए हमें परमेश्वर के संग चलना सीखना चाहिए: यही शैतान पग-पग पर हमारा सामना करेगा। जैसे डाकू भी दरिद्र की अपेक्षा धनी के घरों में अधिक डाका डालते हैं, वैसे ही शैतान भी सांसारिक व्यक्ति की अपेक्षा विश्वासी पर अधिक प्रहार करता है। अतः हमें ज्ञात होगा कि हम जितना ही आत्मिक परिपक्वता की ओर बढ़ेंगे, शैतान का युद्ध उतना ही घमासान होता जाएगा।

परमेश्वर की समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने हेतु आगे बढ़ने वाले विश्वासी को रोकने के लिए अनेक शक्तियाँ प्रयत्नशील हैः संसार और उसका विभिन्न आकर्षण, देह और उसकी अशुद्ध लालसाएँ तथा शैतान और उसके कुटिल उपाय। यदि विश्वासी की आत्मिक वृद्धि में ये बाधाएँ हैं, तो हमें विस्मय हो सकता है कि परमेश्वर इन्हें दूर क्यों नहीं करता, अथवा विश्वासी को इनसे क्यों नहीं बचाता। शताब्दियों से यह समस्या अनेक मनों को पीड़ित करती आई है। यहाँ इतना ज्ञात करना ही पर्याप्त है कि हमारा स्वर्ग में रहने वाला पिता हम सबसे बढ़कर ज्ञानी है, जिसने इन शक्तियों को अस्तित्व रहने दिया है। एक अच्छा कारण यह हो सकता है कि हमारी आत्मिक शक्ति बढ़े। शारीरिक रूप से भी हमारी माँसपेशियाँ तभी सबल हो सकती है जब हम व्यायाम द्वारा उन्हें

वशीभूत करें। अन्यथा हमारी माँसपेशियाँ कोमल और अशक्त होंगी। मल्लयुद्ध की तैयारी में प्रशिक्षण पाने वाले पहलवान को भी निरन्तर व्यायाम आवश्यक हैं ताकि दूसरों से कुश्ती लड़कर वह उस दिवस के लिए स्वयं को तैयार कर सके। उसी प्रकार यदि इस संसार, शरीर और शैतान की परीक्षाओं से सुरक्षित रहें, तो हमारी आत्मिक शक्ति का विकास कदाचित नहीं होगा।

यह ज्ञात कर हमें अत्याधिक साँत्वना मिलनी चाहिए कि हम पर आने वाली प्रत्येक परीक्षा का सामना प्रभु यीशु ने भी किया (इब्रा॰ 4:15)। लूका से हमें ज्ञात है कि यीशु "पवित्रात्मा से भरा हुआ" जंगल में गया तथा परीक्षा के उपरान्त वह "आत्मा की सामर्थ से भरा हुआ" लौटा (4:1, 14)। मनुष्य पर आने वाली परीक्षाओं पर विजयी होने से, वह भी मनुष्य होकर शक्तिशाली बना। तो क्या हम भी परीक्षा में समर्थ नहीं हो सकते? हम कभी कल्पना तक न करें कि सिर्फ मसीही पुस्तकें पढ़ने और धार्मिक सभाओं में उपस्थित होने से हमारी आत्मिक सामर्थ बढ़ सकती है। ये गतिविधियाँ भोजन करने के बराबर हैं, किन्तु यदि हम शक्तिशाली बनना चाहें तो भोजन के साथ ही साथ व्यायाम की भी आवश्यकता है। इसीलिए संसार के लोगों से सम्पर्क न रखने वाले और सुरक्षित मसीही जीवन व्यतीत करने वाले आत्मिक रूप से शक्तिवान नहीं बन सकते।

पवित्रता, स्वास्थ के सदृश्य है। पूर्णरूप से स्वस्थ रहने के लिए हमें नियमित व्यायाम आवश्यक है। तभी हम रोगों से बचाव कर सकते हैं। इसी प्रकार सिद्धता के लिए हमें परीक्षाओं में पड़ना और विजयी होना जरूरी है। यदि हम परीक्षा से बचने का प्रयास करें तो कभी सिद्ध नहीं बन सकते। यही एक कारण है जिसके लिए परमेश्वर ने अदन की बारी में फल का वृक्ष रखा और उसे खाने को मना किया। इससे आदम को अवसर मिला कि परीक्षा पर जीत पाए और पवित्र बनें। हमें भी परीक्षा से भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं। 1 कुरिन्थियों 10:13 के अनुसार प्रभु ने हमें निश्चय दिया है कि वह हमारी सहन-शक्ति से बाहर हमें कभी परीक्षा में न पढ़ने देगा।

भजन संहिता 66:10-12 पुराने नियम के उन अद्‌भुत अध्यायों में से एक है जिससे मालूम होता है कि परीक्षा और विपत्ति द्वारा हमारा कितना अधिक लाभ हो सकता है। अग्नि और जल न सिर्फ हमें आत्मिक रूप से सम्पन्न करते हैं अपितु आत्मिक स्वास्थ प्रदान करते हैं। हमें जो परीक्षाएँ पीड़ित करती हैं, वे ही बाइबल में वर्णित लोगों को भी करती थी। याकूब 1:17 में लिखा है कि एलिय्याह को भी हमारे जैसी लालसाओं और इच्छाओं पर जीत प्राप्त करनी थी। परमेश्वर के इन भक्तों ने परीक्षाओं पर विजय प्राप्त की, इसलिए वे

शक्तिशाली हुए और परमेश्वर के उपयोगी बने। परमेश्वर हम पर परीक्षा आने देता है कि हम परखे जाएं। जिस व्यक्ति का प्रयोग परमेश्वर करेगा। उस पर परीक्षा आनी अनिवार्य है। अकेले में हम पर जो परीक्षाएं आती है उनका अभिप्राय है कि हमें जन सेवा के उपयुक्त बनाए। परीक्षा पर विजयी होना तैरना सीखने के सदृश्य है। आप एक दिन में तैराक नहीं बन सकते। किन्तु निश्चयबद्ध होने से आप कभी न कभी यह कौशल सीख लेंगे। तब आपको जल का भय नहीं रहेगा। ठीक इसी प्रकार यदि हम दृढ़ निश्चय करें तो मसीह में परीक्षा पर जीत का रहस्य सीखेंगे और उससे भी हम को डर न होगा।

मत्ती, अध्याय 4 में प्रभु यीशु ने जिन तीन परीक्षाओं का सामना किया उन पर संक्षेप में विचार करेंगे। इनका अध्ययन कर हमें ज्ञात होगा कि शैतान हम पर भी इन्हीं क्षेत्रों में परीक्षाएं लाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ वर्णित तीनों परीक्षाएँ, चालीस दिनों की परीक्षाओं के उपरान्त, प्रभु को गिराने के लिए शैतान का अन्तिम प्रयत्न था। उसके हाथों ये तीन अन्तिम हथियार थे, किन्तु प्रभु ने इन सब पर विजय पाई।

प्रथम परीक्षा देह की स्वाभाविक भूख के क्षेत्र में आई। इस घटना पर यह भोजन की आकांक्षा थी (पद 3, 4)। यह महत्वपूर्ण बात है कि हव्वा और एसाव दोनों पर भी ऐसी ही परीक्षा आई थी (उत्पत्ति 3:6; 25:34), किन्तु जहाँ इन दोनों की पराजय हुई वहीं मसीह की जीत हुई। आज भी परमेश्वर के नियुक्त साधनों के बाहर देह की स्वाभाविक क्षुधा तृप्ति करने की परीक्षा शैतान समस्त स्त्री पुरुषों पर लाता है। भोजन, आराम, यौन इत्यादि इच्छाएँ स्वाभाविक भूख हैं जिन्हें परमेश्वर ने स्वयं हमें दिया है। किन्तु उसी से साधन और उपाय भी ठहराए हैं जिनके द्वारा हम सब क्षुधा की विधिवत तृप्ति कर सकते हैं। किन्तु जब हम उनकी तृप्ति परमेश्वर द्वारा नियुक्त साधनों के बाहर करना चाहते हैं, अथवा जब हम इनकी तृप्ति आवश्यकता से अधिक करते हैं, तभी पाप करते हैं। शैतान यहाँ हमारी परीक्षा बड़ी चतुराई से करता है। खुले रूप से पाप की बुलाहट तो नहीं होगी—सिर्फ अनैतिक तरीके से देह की विधिवत इच्छाओं के सन्तोष की माँग होगी। आवश्यकता से अधिक भोजन करेंगे तो हम पेटू बन जाएंगे और एक दिन भी भोजन बिना नहीं जी सकेंगे। इस प्रकार परमेश्वर के लिए हमारी उपयोगिता में गम्भीर रुकावट पैदा होगी। यह बात उस समय भी लागू होगी, जब हमने आलसियों के सदृश्य यह अनुशासन न सीखा हो कि प्रातः शीघ्र बिस्तर से उठकर परमेश्वर के साथ समय बिताएँ।

आज पाश्चात्य देशों में शैतान के अनेक अनुगामी हैं जो "नवीन नैतिकता" पर आस्था रखते हैं। दुर्भाग्यवश यह तत्वज्ञान आधुनिक युग में पूर्वी देशों में भी

फैल रहा है। इनकी इच्छानुसार यौन प्रवृत्ति के क्षेत्र में संयमपूर्ण आचरण की तनिक आवश्यकता नहीं। भीड़ की भीड़ ने मानो इस दर्शनज्ञान का लाईसेन्स ले रखा हो। सत्य से प्रेम न रखने का परिणाम यह हुआ है कि उन्होंने झूठ पर विश्वास किया है (2 कुरि॰ 2:10-12)।

शमूएल और दाऊद भी इसी अभिलाषा के शिकार हुए थे। दाऊद गोलियत पर विजयी हो सका था किन्तु स्वयं की अभिलाषा पर नहीं। अनेक शक्तिशाली व्यक्ति भी इसमें फंसे पड़े हैं। जीवन के इस क्षेत्र में जो व्यक्ति लापरवाह अथवा अनुशासन रहित होगा, वह सहज ही शैतान के चंगुल में फंसेगा। उदाहरणार्थ नारी की वेशभूषा के आधुनिक फैशन को लीजिए। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन अंगों के आवरण के लिए परमेश्वर का अभिप्राय था, उन्हीं का अनावरण इस फैशन द्वारा होता है। यह फैशन, नग्न देह के अनावरण के साथ सिनेमाघरों में दर्शाया जाता है। इसका विज्ञापन निर्लज्जतापूर्वक सड़क किनारे के पोस्टरों, समाचार पत्रों तथा पत्रिकाओं में किया जाता है। ये सभी शैतान की सुनियोजित युक्ति है कि लोगों को पूर्णतः उनकी अभिलाषाओं का गुलाम बना दे। इन बुरे दिनों में यदि हमें अपनी लालसाओं को जीतना है, तो अय्यूब के सदृश्य अपने नेत्रों पर अनुशासन रखना है (अय्यूब 31:1)। इन इच्छाओं को उत्तेजित करने वाली किसी सामग्री को पढ़ने तथा उसे देखने से हमें अस्वीकार करना चाहिए। दाऊद ने पाप किया, क्योंकि उसने अपने नेत्रों को नियन्त्रित नहीं किया (2 शमूएल 11:2)। उसे एक कड़वी शिक्षा मिली। अतः आगे चलकर उसने परमेश्वर से प्रार्थना की, ताकि परमेश्वर नेत्रों को अनुशासित रखने में उसकी सहायता करे (भजन संहिता 119:37)। हमारे लिए भी ऐसी लगन की प्रार्थना हितकर होगी।

पौलुस प्रेरित को इस तथ्य का अत्यन्त आभास था कि देह को स्वाभाविक भूख में अत्यधिक लीन होने से वह परमेश्वर की सेवकाई के अयोग्य रह जाएगा। अतः उसने अपनी देह पर कठोर अनुशासन रखा तथा उसे निरन्तर परमेश्वर के अधीन किया (1 कुरिन्थियों 9:27)। इस क्षेत्र में अनुशासनहीनता के कारण सहस्त्रों लोग परमेश्वर की सेवकाई से आयोग्य हुए हैं।

प्रभु यीशु पर जो दूसरी परीक्षा हुई—वह अहंकार की थी। शैतान ने उससे अनुनय की कि वह मन्दिर के कंगूरे से बिना आहत हुए कूदकर मन्दिर के आँगन में नीचे खड़ी भीड़ का कौतुक करे। भजन॰ 91:11-12 की प्रतिज्ञा का दावा कर प्रभु यीशु ने अपना बचाव किया। यहाँ प्रलोभन यह था कि यीशु परमेश्वर पर अपना विश्वास प्रगट करके कुछ कौतुकपूर्ण कार्य करेः कूदे, जिसकी आज्ञा परमेश्वर ने नहीं दी थी।

वर्तमान समय के लोगों में चमत्कार के प्रति पागलपन है और कहीं-कहीं मसीही कलीसियाएँ भी इसके वशीभूत हुई हैं। शैतान निरन्तर विश्वासियों को प्रेरित कर रहा है कि वे कुछ न कुछ साहसिक एवं असाधारण कार्य करें, ताकि परमेश्वर पर उनका विश्वास प्रगट हो। शैतान की इन प्रेरणाओं का अनुकरण कर, परमेश्वर के सुनियोजित पथ से अनेक लोग पूर्णतः भटक गए हैं।

अनेक लोग ऐसे हैं जिन्होंने अधीनता से, परमेश्वर के समय और मार्गदर्शन की प्रतीक्षा किए बिना किसी कार्य को आरम्भ किया है और उसके द्वारा अपने जीवनों को बर्बाद किया है। जैसा किसी का कथन, "यदि हम परमेश्वर की सुरक्षा चाहें तथा उसकी प्रतिज्ञाओं का दावा करना चाहें, तो हमें उसके मार्ग में रहना एवं उसके समय और गति के अनुसार चलना होगा।" प्रभु यीशु का जीवन इसका सिद्ध उदाहरण है। उसने सदैव परमेश्वर का नेतृत्व पाकर कार्यारम्भ किया। उसने कभी शैतान अथवा मनुष्य की प्रेरणा से नहीं, किन्तु सिर्फ अपने पिता की इच्छा तथा उसके समयानुसार ही कार्य किया। जो उससे याचना करते थे, उनसे वह कहता था, "मेरा समय अभी तक नहीं आया" (यूहन्ना 7:6); अर्थात् "मैं अपने पिता की अनुमति से ही कुछ कर सकता हूँ।" परमेश्वर के समय की प्रतिक्षा किए बिना शीघ्रता से कार्य में हाथ डालने के कारण शाऊल ने अपनी राजगद्दी खो दी (शमूएल 13:8-14)। इसी तरह कई विश्वासी भी परमेश्वर के सर्वश्रेष्ठ उपाय से चूक गए हैं। उदाहरणार्थ, परमेश्वर की इच्छा जाने बिना बहुतों ने विवाह में शीघ्रता की हैं। जल्दबाजी से यह काम कर अब वे पछताते बैठे हैं। भाइयों और बहिनों, परमेश्वर के समय की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करना सीखिए और आपको कभी पछतावा नहीं होगा। अपनी प्रतीक्षा करने वालों को वह कदाचित निराश नहीं करेगा (यशायाह 49:23)।

तीसरी परीक्षा में शैतान ने मसीह को संसार का समस्त राज्य और उसका वैभव दर्शाया। उसने कहा कि झुककर प्रणाम करने से सब वैभव मसीह का हो जाएगा। यहाँ एक परीक्षा है जो हम सभों पर आती है। यह स्वतः के लाभार्थ अपने मसीही सिद्धान्तों से समझौता करने की परीक्षा है।

शैतान के सम्मुख घुटने टेकने और अपने सिद्धान्तों से समझौता करने के लिए यदि हम तैयार हों, तो इस संसार से बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं। हम धन प्राप्त कर सकते हैं। यह सबसे बड़े आकर्षणों में से एक है। बहुधा विश्वासियों पर परीक्षा आती है कि थोड़ा और पैसा कमाने के लिए अपने स्तरों को नीचा करें। नौकरी ढूँढ़ते समय क्या हम परमेश्वर की इच्छा की अपेक्षा तनख्वाह प्राप्ति की आशा से ही प्रेरित नहीं होते हैं? परिणाम-स्वरूप शैतान के

लिए अत्यन्त सहज हो जाता है कि वह हमारे जीवनों के लिए परमेश्वर के अभिप्राय से हमें दूर रखे। यही बालाम की भूल थी। आज भी उनके लोग इस पथ का अवलम्बन कर रहे हैं। (2 पतरस 1:15; यहूदा 11 की तुलना गिनती 22 से कीजिए)। क्या हमें यह अनुभूति होती है कि ऐसा करना शैतान के समक्ष नतमस्तक होना है? अनेक मसीही ऐसे भी हैं जिनके कथनानुसार वे सन्देहास्पद सांसारिक तरीकों से "परमेश्वर के कार्य के लिए पैसा एकत्र" करते हैं। चाहे लक्ष्य कितना ही अच्छा क्यों न दिखे, उसकी पूर्ति अनैतिक साधनों द्वारा हो– इसकी आज्ञा परमेश्वर कदाचित नहीं दे सकता। परमेश्वर नहीं चाहता कि हम शैतान के समक्ष घुटने टेक संसार को जीतें। यदि हम पूर्णतः परमेश्वर का अनुसरण करेंगे, तो धन के आकर्षण से चैतन्य रहेंगे। प्रभु यीशु ने हमें चितौनी दी कि यदि हम परमेश्वर के बने रहेंगे, तो हमें धन को तुच्छ जानना होगा (लूका 16:13)।

पद का प्रलोभन, विख्यात बनने की इच्छा भी एक परीक्षा है। सांसारिक प्रसिद्धि खोजने वाले व्यक्ति को अनेक बार समझौता करना पड़ता है। मसीही समाज तथा परमेश्वर के कार्य में भी यही परीक्षा आती है। हम सभों में कुछ न कुछ है जो लोकप्रियता का इच्छुक रहता हैं। हम सभी चाहते हैं कि दूसरे हमें सराहें, हमारा सम्मान करें। "पार्टी में आकर्षण के केन्द्र" बने रहने से हम सभों को आन्तरिक सन्तोष होता है। यहाँ तक कि कलीसिया में भी स्वयं को दूसरों से उत्तम दर्शाने, गाने, उपदेश देने अथवा प्रार्थना करने में भी दूसरों से स्वयं को योग्य समझने की परीक्षा कितनी अधिक आती है। हम अपने साथी विश्वासियों को नीचा दिखाकर दूसरों का सम्मान प्राप्त करने की परीक्षा में पड़ते हैं। ये सब मसीह की आत्मा से सर्वथा विपरीत है।

मसीही प्रचार को ही लीजिए। वह कितनी ही बार इस परीक्षा में पड़ता है कि स्वयं को "व्यापक दृष्टिकोण वाला" सिद्ध करे; अपने श्रोताओं की इच्छा के प्रतिकूल बाइबल के सिद्धान्तों पर न बोले, अपने उपदेश में पाप अथवा लोभ की निन्दा न करे उसे अपनी मण्डली के घनाढ्य और सम्मानीय वर्ग को चोट पहुँचाने से दूर रखिए, इस प्रकार उसके प्रभाव तथा उसके श्रोतागणों में वृद्धि होगी। किन्तु किस कीमत पर? अवश्य शैतान के सम्मुख नत-मस्तक होने के मूल्य पर जिसके द्वारा इन समस्त सुझावों का उद्‌भव होता है। बहुत कम संख्या में ऐसे प्रचारक होंगे जिन पर ये परीक्षाएँ किसी न किसी समय न आई हों। दुःख का विषय है कि अनेक इस बात से अनभिज्ञ रहते हुए परीक्षा में गिरे हैं कि इन समस्त समझौंतो के परिणाम-स्वरूप वे शैतान के संग अपराधी बनेंगे।

विवाह के क्षेत्र में नवयुवक और नवयुवतियों पर अधिकतर परीक्षाएँ आती हैं। हमने पहले ही कहा कि इस विषय में शीघ्रता करना खतरे से खाली नहीं, तथा इस विषय पर परमेश्वर के समय की परीक्षा में कोई हानि नहीं। किन्तु इससे भी अधिक गम्भीर परीक्षाएँ हैं। अनेक विश्वासियों ने परमेश्वर के वचन की स्पष्ट शिक्षा को जानबूझकर दुष्टतापूर्वक उसका उल्लघंन किया है और अविश्वासियों के साथ विवाह सम्बन्ध जोड़ा है। छात्र जीवन में मसीह के लिए साहसिक कदम लेने वालों का भी इस मामले में दुखी अन्त होता है और वे विश्वास से पीछे हट जाते हैं। इस बात पर समझौता करने के द्वारा उस जीवन की पूर्ण उपयोगिता नष्ट हो जाती है जिसका प्रयोग आरम्भ में परमेश्वर ने बृहद रूप से किया। शैतान के समक्ष घुटने टेकने की यही कीमत है।

भारत में नवयुवकों को अपने जीवन साथी का चुनाव करते समय अत्याधिक दबाव का सामना करना पड़ता है। उन माता पिताओं और सम्बन्धियों की ओर से दबाव डाला जाता है जिन्हें न इस घटना से सहानभूति है और न ही उनका जीवन परिवर्तन हुआ है। अत्याधिक दरिद्रता अथवा स्त्री-धन माँगने की अन्यायपूर्ण प्रथा के कारण आर्थिक बोझ भी सहना पड़ता है। सबसे दुःखद बात यह है कि मसीही धर्म में नया जन्म प्राप्त करने के उपरान्त भी, विधर्मियों के सदृश्य समाज में जातिभेद प्रथा को विवाह सम्बन्ध में स्थान दिया जाता है। कोई विस्मय नहीं कि अनेक मसीही अन्ततः शैतान के इन दबाओं से कुचल जाते हैं और अविश्वासी जीवन साथी से विवाह कर लेते हैं।

हमारे नेत्रों में धूल डालने के लिए शैतान के असंख्य तर्क हैं जो ऊपर से सच्चे प्रतीत होते हैं। वह विनय करता है, "2 कुरिन्थियों 6:14 के अनुसार आसमान जुए वाली बात को अधिक संकीर्णता से न लो। विवाह पश्चात तुम्हें सिर्फ इतना ही करना है कि अपने साथी को सुसमाचार पर विश्वास करने के लिए प्रवृत करो और सब कुछ ठीक हो जाएगा। इस स्वर्ण अवसर को खोने से सम्भवतः तुम्हें पुनः इतना प्रशंसनीय साथी प्राप्त न होगा।" कितने उसके सुझावों के बहकावे में फंसे हैं! हाँ मुझे ज्ञात है कि परमेश्वर ने आश्चर्यकर्म किए हैं और अधिक प्रार्थना के उत्तर में नया जन्म न पाए हुए कुछ पति या पत्नियों को परिवर्तित किया है। किन्तु इसके आधार पर हम परमेश्वर की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते। शैतान के अधीनस्थ होने का यह कोई बहाना नहीं है।

क्या आपके जीवन में भी ऐसा समय आया है? मेरी आपसे याचना है: अपने विश्वास के लिए साहस से दृढ़ रहिए! शैतान के प्रत्येक प्रस्ताव को अस्कीकृत कीजिए, चाहे कितना भी दबाव क्यों न पड़े। प्रार्थना में परमेश्वर की

सहायता खोजिए और उसकी इच्छा की प्रतीक्षा कीजिए। यह आपको कभी निराश नहीं करेगा। उसको सम्मान दीजिए और वह आपको अपने चुनाव से साथी देगा। यदि चुनाव उसका होगा, तो अवश्य सर्वश्रेष्ठ होगा।

अपने प्राणों के शत्रु के पग पर गिर उसकी आराधना करने की अनेक चालाकी से पूर्ण परीक्षाएं हैं। भाइयों और बहिनो यदि आप अपने जीवन के लिए परमेश्वर का लक्ष्य नहीं खोना चाहते, तो इन सबका विरोध कीजिए। नैतिक और आत्मिक सदाचार के मार्ग का अवलम्बन कीजिए, चाहे उसके लिए आपकी सांसारिक हानि क्यों न हो। अन्य विश्वासियों के बहकावे में न आइए जिनका स्तर निम्न है और सम्भवतः जिन्होंने दोनों संसार से लाभ उठाने की चेष्टा की है। क्या हुआ कि यदि ऐसा प्रतीत होता है कि वे आपसे अधिक मौज कर रहे हैं? देखने से धोखा हो सकता है। इस संसार की कहलाने वाली सफलता, अनन्तकाल के उज्जवल प्रकाश में असफलता कही जा सकती है। इस सबको छोड़ने का निश्चय कीजिए। लाभ अथवा समृद्धि तक पहुँचने के लिए शैतान के छोटे रास्तों को अस्वीकार कीजिए। परमेश्वर के साथ चलिए तथा सिर्फ उसी की प्रशंसा खोजिए। उसे पकड़े रहिए तथा अन्त में आपको कोई पछतावा न रह जाएगा।

अब तक हमने सिर्फ पापमय बातों पर ध्यान दिया हैं जो हमें परमेश्वर के सम्पूर्ण लक्ष्य की ओर से रोक सकती हैं। कुछ ऐसी न्याय संगत बातें भी हैं जो हमारे लिए बाधक सिद्ध हो सकती हैं। इसीलिए इब्रानियों 12:1 में लिखा है कि न सिर्फ हम अपने पापों को छोड़ें, किन्तु प्रत्येक रोकने और उलझाने वाली बात को भी दूर करें और दौड़े।

एक उदाहरण लीजिए। बातचीत करना स्वयं में पाप नहीं। किन्तु वार्तालाप सहज ही दूसरों की बुराई करने का स्थान ले सकता है जो हानिप्रद है। बाइबल अध्ययन और प्रार्थना का समय भी निरर्थक वार्तालाप ले सकता है। सभोपदेशक 5:3 में लिखा है कि बकवादी मूर्ख है और नीतिवचन 10:19 में चितौनी है कि जहाँ बहुत बातचीत होती है वहाँ अपराध हुए बिना नहीं रहता। अनेक विश्वासी बातचीत में संयम की कमी के कारण परमेश्वर के संदेशवाहक बनने के सौभाग्य से वंचित हुए हैं (यिर्मयाह 15:19)। आवश्यकता से अधिक अथवा लापरवाही से किए गए वार्तालाप का अवश्यम्भावी परिणाम आत्मिक शक्ति का ह्रास होता है।

दूसरा उदाहरण लीजिए, मसीही अराधना में संगीत के महत्व पर कोई संदेह नहीं करेगा। किन्तु कभी-कभी आवाज के प्रशिक्षण तथा वाद्य यन्त्रों द्वारा

इस वरदान का विकास करने में घन्टों लगाए जाते हैं। इसका अभ्यास बाइबल अध्ययन अथवा प्रार्थना से अधिक महत्वपूर्ण स्थान ले लेता है। जब ऐसा होता तो संगीत महत्वपूर्ण होने पर भी हमारी आत्मिक प्रगति में बाधक हो जाता है। कितने विश्वासी हैं, जो दैनिक मनन करने की अपेक्षा गायन मण्डली के अभ्यास में सदैव उपस्थित रहते हैं।

पौलुस प्रेरित को शैतान की अनेक युक्तियों कि जानकारी थी। अतः वह न सिर्फ पापपूर्ण बातों को दूर रखने में सावधान था, किन्तु उन उचित बातों के प्रति भी जो परमेश्वर के अभिप्रायों को पूर्ण करने में बाधक सिद्ध हो सकती थी (1 कुरि॰ 10:23)। उसने प्रथम बातों को प्राथमिक महत्व दिया था और निश्चय किया था कि परमेश्वर के अभिप्रायों तक पहुँचने के लिए वह कुछ लाभ की वस्तुओं को भी त्याग देगा। उसने मालूम किया कि मसीही जीवन में भी अच्छाई सर्वश्रेष्ठ के मार्ग में बाधक हो सकती है। शैतान यह जानकर कि हमें पापपूर्ण बातों से नहीं रोक सकता, प्रयत्न करता है कि उचित बातों द्वारा हमारी प्रभावशीलता को घटाए। इन बातों द्वारा हमें प्रेरणा मिलनी चाहिए कि हम घुटनों पर प्रभु से सहायता माँगें, ताकि उचित और अनुचित तथा लाभप्रद और हानिप्रद बातों में भेद कर सके।

सामर्थदायक शक्तियाँ

अब तक कही गई बातों की गणना सिर्फ नैराश्यजनक बातों में हो सकती है। शैतान की युक्तियाँ इतनी छलपूर्ण और अधिक दिखाई दे सकती हैं कि हमें सफलता-पूर्वक अपनी सुरक्षा की कोई आशा ही दिखाई न दे। सम्भव है कि हमने उसके किसी आक्रमण पर विजयी होने का वर्षो से भरसक प्रयास किया हो और असफल रहे हों। किन्तु परमेश्वर में हमारे लिए आशा का संदेश है। उसने हमें अपना पवित्र आत्मा प्रदान किया है। उसी की सामर्थ हमें परमेश्वर के समस्त अभिप्रायों को पूर्ण करने की शक्ति देती है। हममें वास करने के लिए इस पवित्र आत्मा के वरदान को दिए बिना परमेश्वर भी हमसे आशा नहीं रखता। वह कदाचित आशा नहीं रखता कि हम बिना किसी सहायता के उसकी इच्छा पूर्ण करें। हमारे युग का विशिष्ट चिन्ह यही है कि मसीह के पुनरुत्थान और स्वर्गारोहण के पश्चात पवित्र आत्मा स्वयं मसीह को समर्पित जीवन में वास करता तथा उसे परिपूर्ण करता है। परमेश्वर सिर्फ उच्च अभिप्रायों की बुलाहट ही नहीं देता, किन्तु उन तक पहुँचने की योग्यता भी हमें देता है।

अपनी सांसारिक सेवकाई प्रारम्भ करने से पूर्व परमेश्वर के पुत्र मसीह के लिए भी पवित्र आत्मा से परिपूर्ण होना आवश्यक था। यह घटना उसके

बपतिस्मे के समय घटी और इसके पश्चात आत्मा की सामर्थ द्वारा ही मसीह ने जंगल में आने वाली परीक्षाओं पर जीत पाई। इसी पवित्र आत्मा की सामर्थ ने उसे लम्बी अवधि तक संसार में सेवा कार्य करने तथा क्रूस के मार्ग तक चलने के योग्य बनाया।

यही बात पौलुस तथा अन्य प्रेरितों के जीवन में भी लागू होती है। पौलुस ने साक्षी दी कि परमेश्वर के लिए उसकी सेवा सिर्फ परमेश्वर की आत्मा की सामर्थ द्वारा ही पूर्ण हो सकी (रोमियों 15:18, 19)। अनेक लोगों ने इस आज्ञा की उपेक्षा की है, "आत्मा से परिपूर्ण होते जाओ" (इफिसियों 5:18)। कई व्यक्ति इस पूर्णता के खोजी होने से भय खाते हैं, कहीं ऐसा करने से उन्हें धर्मान्त न कहा जाए। शैतान ने इस विचार के भय का लाभ उठा कलीसिया के अधिकाशँ लोगों को रोका है कि वे परमेश्वर से इसकी माँग न करें दूसरों को उसने भूतकाल के किसी अत्यन्त आनन्ददायक अनुभव में ही सन्तुष्ट रखा है। हाँ ऐसा अनुभव परमेश्वर से ही प्राप्त करना सम्भव है किन्तु यह वर्तमान में पवित्र आत्मा की सतत परिपूर्ण के आनन्द बिना निरर्थक है।

पवित्र आत्मा की पूर्णता के विषय में अनेक लोगों के विचारों में भ्रम है। उनका विचार है कि परमेश्वर अपनी आत्मा हमें देने के लिए अति अनिच्छुक है। किन्तु लूका 11:11-13 में लिखे यीशु के शब्दों द्वारा हमारे मन में ऐसे संशय सदा के लिए दूर हो जाना चाहिए। "स्वर्गीय पिता अपने माँगने वालों को पवित्र आत्मा क्यों न देगा।" अतः यदि इस आशिष को प्रदान करने में परमेश्वर ने विलम्ब किया है, तो यह निश्चयपूर्वक हमारा दोष है, उसका नहीं। वह हमसे सिर्फ इतना ही चाहता है कि हम उसे अपने जीवनों का पूर्ण समर्पण करें। इन शब्दों को पूर्ण कीजिए और प्रतिदिन करते रहिए तो आप निरन्तर पवित्र आत्मा से परिपूर्ण रहेंगे।

इस विषय पर डॉ॰ वाल्टर एल॰ विल्सन की साक्षी अनेक लोगों के लिए आशिष का कारण रही है। उनका कथन है कि पवित्र आत्मा के प्रति समर्पण के अनुभव द्वारा, सत्तरह वर्षों पूर्व नये जन्म के अनुभव से बढ़कर उनके जीवन में परिवर्तन आया। उद्धार प्राप्ति के कुछ वर्षों तक डॉ॰ विल्सन अपने जीवन और कार्यों में फलहीनता देखकर असंतुष्ट बने रहे। अन्त में उन्होंने पहचाना कि अपने जीवन में पवित्र आत्मा को पर्याप्त स्थान न देना ही इसका कारण था। साथ ही साथ उन्हें भय था कि यदि वे पवित्र आत्मा की पूर्णता का अनुभव खोजें तो उन्हें धर्मान्ध समझा जाएगा। एक दिन उन्होंने रोमियों 12:1 से सन्देश सुना जहाँ वक्ता इस बात पर जोर दे रहे थे, कि इस पद के अनुसार पवित्र

आत्मा ही है जिसे हमें अपनी देह समर्पित करनी है। क्योंकि प्रभु यीशु की स्वतः की देह थी और परमेश्वर पिता स्वर्ग के सिंहासन पर विराजमान था और पवित्र आत्मा ही था जो पिन्तेकुस्त के दिन इस पृथ्वी पर बिना देह के उतरा था। डॉ॰ विल्सन इस सन्देश को सुनने के पश्चात अपने घर गए और दरी तक मुंह के बल परमेश्वर के सम्मुख गिरे। उन्होंने पवित्र आत्मा को सम्बोधित कर कहा, "मेरे प्रभु, मैंने अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में तुझसे दुर्व्यवहार किया है। मैंने गुलाम की नाईं तुझसे बर्ताव किया है। जब मुझे तेरी आवश्यकता थी, तब मैंने तुझे पुकारा। जब मुझे किसी कार्य में संलग्न होना था, तब उसमें सहायता के लिए तुझे बुलाया। मैंने तुझे दास का स्थान दिया है। स्वेच्छा से चुने हुए कार्य में सहायता के लिए मैंने तेरा प्रयोग सिर्फ दास के सदृश्य किया है। मैं पुनः ऐसा नहीं करूँगा। अभी इसी समय मैं तुझे अपनी देह, सिर से पैर तक समर्पित करता हूँ। मैं अपने हाथ-पैर, नेत्र, होंठ, मस्तिष्क, सब कुछ जो मैं भीतर-बाहर से हूँ, तुझे देता हूँ। तू अपनी खुशी के अनुसार यह जीवन जी। तू चाहे तो इस देह को अफ्रिका भेज अथवा कैन्सर से बिस्तर में पड़े रहने दे। तेरी इच्छा हो तो मुझे नेत्रहीन कर अथवा अपना सन्देश सुनाने तिब्बत भेज। तू चाहे तो इस शरीर को एस्किमों तक भेज, अथवा निमोनिया से अस्पताल भेज। इस क्षण से यह तेरी देह है तू चाहे जो कर मेरे प्रभु, तेरा धन्यवाद हो। मेरे विश्वासानुसार तूने इसे ग्रहण किया है क्योंकि रोमियों 12:1 में लिखा है 'परमेश्वर को ... चढ़ाओ'। हे प्रभु मुझे लेने के लिए एक बार पुनः तेरा धन्यवाद हो। हम आज से एक दूसरे के हैं।" डॉ॰ विल्सन की साक्षी है कि इस समर्पण के बाद से उसके कार्यों में, दूसरे दिन प्रातः से ही आश्चर्यजनक फल दृष्टिगोचर होने लगा। (यह घटना, वी॰ रेमन्ड एडमन द्वारा लिखित "दे फाउन्ड द सिक्रेट" अध्याय 18 से उद्धृत है।)

मैं आपसे जाकर इस घटना को नकल करने के लिए नहीं कहता। परमेश्वर नहीं चाहता कि हम दूसरों की नकल करें। किन्तु यहाँ एक सिद्धान्त है जिस पर हमें ध्यान देना हितकर होगा। वह यह है कि यदि हम बिना शर्त के पवित्र आत्मा को स्वयं का समर्पण करें तो वह हमें परिपूर्ण करेगा। बहुधा हमारा समपर्ण अधूरा होता है। हम किसी अमुक स्थान को जाना नहीं चाहते। हमारी मनोकामना होती है कि परमेश्वर की सेवा करने कहाँ जाएं और कैसे करें। हम इसी कार्य को ध्यान में रखकर सफलता के लिए पवित्र आत्मा की सामर्थ चाहते हैं। यहि तो बात है हम शर्त रखकर उसे अपना समर्पण करते हैं। हमने स्वयं की शर्तें बनाई हैं यही कारण है कि पवित्र आत्मा के कार्य का दुर्लभ ही

अनुभव करते हैं। सम्भवतः हम सोचते हैं कि उसके अभिषेक बिना हम अधिकाँश समय ठीक से चला सकते हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि कितनी हानि में हैं। हम कितने मूर्ख है! क्या पवित्र आत्मा ही नहीं है जो हमारे जीवनों को सर्वाधिक उपयोगी बना सकता है?

भाइयो और बहिनो, जब तक परमेश्वर की आत्मा के प्रति हमारा समर्पण बिना शर्त के न हो, तब तक वह हमें कैसे परिपूर्ण कर सकता है? हमें पूरे हृदय से उसकी सब इच्छाओं को पूर्ण करने का इच्छुक होना चाहिए, चाहे कितना ही निम्न स्तर का कार्य क्यों न करना पड़े। विवाह में हमें उसके चुनाव के साथी को ग्रहण करने का इच्छुक होना चाहिए, चाहे गोरा हो या काला, शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, धनी हो अथवा निर्धन, जो हमारे साथ परमेश्वर में एक हो। नौकरी में हमें तैयार होना चाहिए कि यदि सिर्फ हम परमेश्वर के साथ हैं, तो अपना तथा अपने परिवार का त्यागपत्र चाहे जीवन भर एक स्थान पर नौकरी करते रहें अथवा सदैव स्थानान्तर माँगों को त्यागकर पवित्र आत्मा को अपना समर्पण किया है? सिर्फ हमारे इसी प्रकार के समर्पण से उसकी भरपूर सामर्थ का हम अपने जीवन में अनुभव करेंगे। और सिर्फ इसी सामर्थ द्वारा ही हम परमेश्वर के अभिप्रायों को पूर्ण करेंगे।

अवरोधक मनःस्थिति

फिलिप्पियों के जिस अध्याय पर हम ध्यान कर रहे हैं, पौलुस उसमें उदाहरण द्वारा दर्शाता है कि यदि हम परमेश्वर के पूर्ण लक्ष्य तक पहुँचना चाहें तो हमारी क्या मनःस्थिति होनी चाहिए। वह कहता है कि वह पिछली बातों को भूलकर भविष्य की बातों की ओर बढ़ता चला जाता है। ऐसा करने में अनेक परीक्षाएँ आती हैं तौभी वह पीछे की ओर देखना नहीं चाहता। इससे पूर्व प्रेरितों 20:23, 24 के अनुसार उसने कहा था कि उसके आगे सताव है—इस जानकारी से वह विचलित नहीं हुआ। सताव का भय परमेश्वर के लक्ष्य की ओर बढ़ने के उसके निश्चय को नहीं डिगा सका था। प्रेरितों 26:19 में हम पुनः राजा अग्रिप्पा के समक्ष दी गई उसकी साक्षी पढ़ते हैं कि उसने करीब तीस वर्षों पूर्व, प्रभु से स्वर्गीय दर्शन पाकर उसकी अवहेलना नहीं की थी। अपनी सबसे अन्तिम पत्री में वह यह दावा कर सका कि उसने अच्छी लड़ाई लड़ी है और अपनी दौड़ पूरी की है (2 तीमु॰ 4:7)। यहाँ एक व्यक्ति है जिसने अपने अन्तिम दिन तक परमेश्वर के अभिप्राय रूपी पथ का पूर्णतः अनुसरण किया था। पथ त्यागने और लौट जाने के असंख्य प्रलोभन आने पर भी, निन्दा, मिथ्या अभियोग तथा कठिन सताव सहने पर भी उसने लक्ष्य पर

दृष्टि रख विश्वासयोग्यता से अपनी दौड़ पूर्ण की। हम भी आशिषमय होंगे यदि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में ऐसी साक्षी दे सकेंगे।

पीछे की परीक्षा हम पर कितनी अधिक आती है। भूतकालिक असफलताएं हमें निराशा में डुबा देती हैं। जब ऐसा होता है तो शैतान अवश्य आकर हमारे कानों में फुसफुसाता है कि परमेश्वर के लिए अब हमारा कोई प्रयोग नहीं। मुझे यह बात सदैव उत्साहवर्धक लगती है कि गदही के लिए तक कहा गया था कि प्रभु को उसका प्रयोजन है (मत्ती 21:2, 3) यदि प्रभु यीशु को अपना उद्धार का कार्यक्रम पूर्ण करने के लिए एक गवाही की आवश्यकता पड़ी, और यदि एक बार परमेश्वर ने गदही के द्वारा बातें कीं (गिनती 22:28), तो मेरे लिए भी आशा है। क्योंकि पिछले दिनों जितनी बातें लिखी गयीं, वे तथा बालाम की गदही की कहानी भी हमें प्रोत्साहित करने हेतु लिखी गई (रोमियों 15:4)। सम्भव है आप स्वयं को गदहे के सदृश्य मूर्ख समझें तथा हजारों गलतियाँ करें; तौभी परमेश्वर को आपका प्रयोजन है। यदि परमेश्वर चाहे तो आपको चुनकर आपके द्वारा भी बातें कर सकता है।

वही बाइबल जिसमें यह कहा गया है कि हम कल की चिन्ता न करें यह भी उतनी ही दृढ़ता से कहा गया है कि पिछली बातों की ओर दृष्टि न करें। हमें अपना सब अतीत समाप्त करना है तथा प्रभु पर विश्वास रखते हुए वर्तमान और भविष्य का सामना करना है। यदि कल आप गिर जाएं, तो इसे निराशा का कारण न बनने दीजिए। प्रभु के पास जा कर अपनी असफलता स्वीकार कीजिए तथा उसके लोहू में अपने पाप धोइए। तब पुनः आगे बढ़िए। यदि आप फिर गिर जाएं, तो जाइए और तब भी वैसा ही कीजिए। स्वयं को निराशा के हाथ न छोड़िए। बीती सो बीती। अब निश्चयबद्ध हो उस ओर न ताकिए क्योंकि दूध गिराकर उस पर रोने से कुछ होता नहीं है। किन्तु गर्व से भूतकालिक सफलताओं पर भी दृष्टि न डालिए, क्योंकि उससे अभिमान ही बढ़ता है तथा आत्मा का नाश होता है। अतः यदि कल भी परमेश्वर विस्मयजनक रूप से आपका प्रयोग करे तो उसे भी विस्मृत करने का अनुग्रह माँगिए। आत्म-अभिनन्दन में न फंसे रहिए आगे बढ़िए। एक ओर निराशा तो दूसरी ओर घमण्ड दोनों ही शैतान के साधन हैं। जिनका प्रयोग शैतान हमें स्थिर बनाए रखने तथा हमारी प्रभावशीलता कम करने के लिए करता है।

इफिसियों 5:15, 16 में लिखा है कि यदि हम इन बुरे दिनों में बुद्धिमत्ता-पूर्वक व्यवहार करें, तो हमें सतत रूप से समय का सदुपयोग करना है। अर्थात् हमें प्रत्येक अवसर को बहुमोल समझकर, परमेश्वर की महिमा के

लिए उसका प्रयोग करना है (1 कुरिन्थियों 15:58)। हममें से प्रत्येक का जीवन क्षण-भंगुर है। अतः इस थोड़े जीवन काल के प्रत्येक दिन में परमेश्वर का कार्य करना है। यह तभी होगा जब हम उसकी ओर निरन्तर दृष्टि करते रहेंगे। चाहे कितनी भी कठिनाइयाँ हम पर क्यों न आयें, हम मनःस्थिति बनाए रखें। साथ ही साथ हम अपने दोनों ओर विश्वासियों को न ताकें तथा अपने भाग्य और सफलता की तुलना उनसे न करें, क्योंकि इसका भी परिणाम निराशा अथवा अहंकार हो सकता है (यूहन्ना 21:20, 22; 2 कुरिन्थियों 10:12 से तुलना कीजिए)। हमें इधर-उधर न देख सिर्फ सामने ही देखना है (नीतिवचन 4:25)।

जीवन परिवर्तन के पूर्व भी पौलुस प्रेरित अपने धर्म का कट्टर था (प्रेरितों 22:3, 4)। उसका विश्वास क्षीण अथवा कम नहीं था जैसे आधुनिक समय में हम बहुधा देखते हैं। सिर्फ यही अन्तर था कि अब उसने अपना मन स्वर्गीय बातों पर लगाया था, सांसारिक बातों पर नहीं। हमारे जीवते प्रभु ने हमें स्पष्ट बताया कि हमारे गुनगुनेपन से उसे कोई प्रसन्नता नहीं होती (प्रका० 3:16)। परमेश्वर लोगों को पूर्णरूपेण चाहता है क्योंकि सिर्फ पूर्णतः समर्पित लोग ही इस संसार में उसका अभिप्राय पूरा कर सकते हैं। यदि हममें से अधिकाँश अपने मसीही धर्म के समान अध्ययन में अच्छा मन लगाते, तो कभी प्राथमिकशाला से ही उत्तीर्ण नहीं निकल सकते। फिर यदि जैसे अनेक विश्वासी मसीही सेवकाई करते हैं वैसे ही व्यक्ति आधेमन से नौकरी करते, तो कब से उनकी नौकरी छूट जाती। अनेक मसीही दिनचर्या के कार्यों को एकाग्र होकर करते है, किन्तु कितनी खेदजनक बात है कि मसीही कार्यों को ऐसे लगन से नहीं कर सकते। लिखा है कि जब राजा हिजकिय्याह ने सम्पूर्ण मन से कार्य किया तब उसमें कृतार्थ भी हुआ (2 इतिहास 31:21)। किन्तु एक दिन आया, जब वह "आगे की बातों" को भूलकर निश्चिन्त हो गया। उसी दिन परमेश्वर ने उसको छोड़ दिया।

मसीह ने अपनी कथनी और करनी द्वारा अपने अनुयायियों से अनुरोध किया कि उनकी दृष्टि लक्ष्य पर बनी रहे। उसने अपने अनुगामी बनने वाले से कहा कि हल पर हाथ रखकर पीछे देखने वाला परमेश्वर के राज्य के आयोग्य है (लूका 9:62)। इससे थोड़ा पहले हम पढ़ते है कि अपने पिता द्वारा दर्शाए गए मार्ग पर जाने के लिए मसीह ने स्वयं "विचार दृढ़ किया" (पद 51)। "मुझे अपने पिता के भवन में होना अवश्य है"- यही सदैव उसका दृष्टिकोण बना रहा। वह कोई शिष्य ऐसा नहीं चाहता जो उसी दिशा में देखने और उसी मार्ग पर चलने का अनिच्छुक हो।

मसीह यीशु के शिष्य का एकमात्र लक्ष्य जीवन में यही होना चाहिए–परमेश्वर की इच्छानुसार करना तथा उसकी महिमा करना। पैसा, पद विवाह, नौकरी और जीवन में सब कुछ इसी लक्ष्य की पूर्ति में लगाना चाहिए। इन सबका सम्बन्ध परमेश्वर के अभिप्राय से होना चाहिए। इस प्रकार का दृष्टिकोण बनाए रखने से ही हम अपने लिए रोमियों 8:28 की प्रतिज्ञा का दावा कर सकते हैं। क्योंकि सिर्फ उन्हीं के लिए जो परमेश्वर को प्यार करते हैं तथा उसकी इच्छानुसार बुलाए गए हैं, सब बातें मिलकर भलाई को उत्पन्न करती है।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अनन्त काल में उन्हीं का कार्य बना रहेगा, जिन्होंने इस संसार में परमेश्वर की इच्छा पूरी की हो (1 यूहन्ना 2:17)। बाकी सब नष्ट हो जाएंगे। अतः हमारा एकमात्र उद्देश्य परमेश्वर की इच्छा पूर्ण करना होना चाहिए। जैसा प्रभु यीशु के लिए था, वैसा ही हमारे लिए भी यह भोजन और जल हो (यूहन्ना 4:34)। परमेश्वर का मनपसन्द व्यक्ति वह है जो उसकी सब इच्छाओं को पूर्ण करने का अभिलाषी है। परमेश्वर की दृष्टि में ऐसा ही व्यक्ति अपनी पीढ़ी की प्रभावपूर्ण सेवकाई कर सकता है (प्रेरितों 13:22, 36)। प्रभु आधुनिक संसार में ऐसे ही स्त्री–पुरुषों का खोजी है।

पिछले तीनों अध्याओं के समान हम यहाँ भी इसकी शिक्षा को अपने युग से लागू करें। अन्तिम दिनों के विषय बोलते हुए प्रभु यीशु ने शिष्यों को एक बार फिर पीछे पलटकर देखने के विषय चितौनी दी। इसका वर्णन लूका अध्याय 17 में है। इसकी शिक्षा देने के लिए उसने लूत की स्त्री का उदाहरण दिया। उसकी दुर्बलता क्या थी? वह सदोम के निवासियों के समान नहीं थी किन्तु उसने परमेश्वर के सन्देश पर विश्वास किया था। न सिर्फ इतना ही, किन्तु उसका पालन कर उसने नगर को छोड़ा था। पर उसके मन में दूसरे विचार आए–और उसने पीछे देखा। जिस क्षण उसने ऐसा किया उसे तत्क्षण दण्ड मिला: वह नमक का खम्बा बन गई। पीछे दृष्टि करने के फलस्वरूप वह स्थिर अचल खम्भा बन गई। फिर उसी क्षण से वह एक इन्च भी आगे नहीं बढ़ सकी।

अभाग्यवश आज अनेक विश्वासी लूत की स्त्री के सदृश्य निश्चल हैं। बीसवीं शताब्दी की उसकी प्रतिमूर्तियाँ वे लोग हैं, जिन्होंने वर्षों पूर्व उद्धार पा लेने के उपरान्त भी अब तक परमेश्वर की बातों में कोई प्रगति नहीं की है। उनके जीवनों में यहाँ वहाँ, आरम्भ की अपेक्षा अधिक पवित्रता, शान्ति अथवा धीरज नहीं दिखाई देता। पापों से पश्चाताप, अथवा प्रभु में आनन्द या संसार पर जय, अथवा परमेश्वर के अभिप्रायों की समझ में उस दिन की अपेक्षाः कोई

बढ़ती नहीं हुई है, जिस दिन उनका उद्धार हुआ था। जिन पापों द्वारा वे पहले पीड़ित थे, उनसे अभी तक पीड़ित रहते हैं। नये जन्म के समय उनके हृदय में धन, पद आराम प्राप्त करने की जो आकाँक्षा थी, वह आज भी उनमें विशिष्ट रूप से पाई जाती है। इसका अवश्यम्भावी कारण यही रहा कि उन्होंने आगे देखने की अपेक्षा पीछे देखा है। प्रभु यीशु ने स्पष्ट बताया कि अन्तिम युग का यह विशेष खतरा होगा।

क्या आप ऐसा जीवन जीना चाहते हैं जिसमें परमेश्वर की उपस्थिति में पहुँचने पर आपको कोई पछतावा न हो? तब परमेश्वर की इच्छा पूर्ति में संलग्न होइए। दिन प्रतिदिन अपने जीवन के लिए उसका अभिप्राय जानने और समझने का प्रयत्न कीजिए। वह अभिप्राय क्या है–पवित्र आत्मा आपको दर्शा सकता है। पाप सैद्धान्तिक रूप में इसे पुस्तकों से कदापि नहीं सीख सकते, सिर्फ परमेश्वर के साथ चलते हुए अनुभव से सीख सकते हैं। "हे प्रभु मैं क्या करूँ?" यह प्रश्न जीवन परिवर्तन के क्षण से ही पौलुस का था। मैं और आप इससे बढ़कर स्वयं के लिए क्या दृष्टिकोण चुन सकते हैं?

दीर्घायु जीवन बिताना आपका उद्देश्य न हो, किन्तु परमेश्वर को सन्तोष-जनक जीवन व्यतीत करना। संसार में परमेश्वर की इच्छा पूरी कर वहाँ पहुँचने से स्वर्ग और अनन्त भी आपके लिए अधिक सुखदायी प्रतीत होगा।

इन शब्दों को पढ़ने के द्वारा क्या आप सच्चाई से परमेश्वर के समीप आकर कहेंगे, "प्रभु मैं अपने जीवन के लिए तेरी समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने की कामना करता हूँ। उस इच्छा को खोजने का ज्ञान मुझमें नहीं है, न ही उस पर चलने की क्षमता है। तौभी, प्रभु सम्पूर्ण मनोकामना यही है कि अश्रु तथा खून पसीना बहाकर तेरी उच्च बुलाहट तक दौड़ता जाऊँ, ताकि पुरस्कार पाऊँ। वर दे कि तेरी उपस्थिति में आकर मुझे कुछ पछतावा न हो, अपितु इस पृथ्वी पर अपनी दौड़ समाप्त करने तथा महिमा करने का हर्ष हो। प्रभु इसी हेतु मुझे अपने पवित्र आत्मा से पूरिपूर्ण कर।"

ऐसा कीजिए और आपका जीवन सार्थक तथा भविष्य आशाजनक प्रतीत होगा। ऐसे स्त्री-पुरुषों की खोज में प्रभु की आँखें पूरे संसार को ताकती रहती हैं। परमेश्वर वर दे, कि उसकी समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए मैं और आप अपनी पीढ़ी में हर आवश्यक कीमत चुकाने को तैयार हों।

"जो कुछ तेरे पास है, उसे थामे रह, कि कोई तेरा मुकुट छीन न ले" (प्रका॰ 3:11)।

6

उसने परमेश्वर को प्रसन्न किया

इतने ही शब्दों में पवित्र आत्मा ने हनोक के जीवन का वर्णन किया है–कि "उसने परमेश्वर को प्रसन्न किया" (इब्रानियों 11:5)। धन संचयन अथवा सांसारिक सम्मान प्राप्त करने का कोई विवरण नहीं है। इस बात का भी कोई उल्लेख नहीं है कि उसने सन्देश दिया या अच्छे कार्य किये अथवा अपनी साक्षी द्वारा आत्माओं को परमेश्वर के लिए जीता। न ही हमें बताया गया है कि वह कितना लोकप्रिय या विख्यात बना। नहीं, इन सबके बदले उसके जीवन का सांराश एक वाक्य में दिया गया, "उसने परमेश्वर को प्रसन्न किया है"। सिर्फ इतना ही; और इतना ही प्रर्याप्त है।

मेरे भाइयो और बहिनो, इसी का श्रेष्ठ महत्व है वस्तुतः सिर्फ यही एक बात है जिसका अनन्तकाल में महत्व होगा। बाइबल में लिखा है कि, "सब वस्तुएँ परमेश्वर की ही "इच्छा से... सृजी गई" (प्रका॰ 4:11)। अतः तात्पर्य यह है कि हम जितना उसकी इच्छानुसार करेंगे, हमारे जीवनों में उतनी ही अधिक प्रभावशीलता बढ़ेगी। अपनी सृष्टि का अभिप्राय हम किसी अन्य तरीके से पूर्ण नहीं कर सकते। किसी अन्य उपाय द्वारा हमारे उद्धार का मूल्य न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। पृथ्वी पर हमारा अस्तित्व ही निरर्थक होगा यदि कोई उसके द्वारा परमेश्वर की महिमा नहीं होती।

मेरा विश्वास है कि इन पृष्ठों में परमेश्वर ने हमारे जीवन की कुछ वास्तविक प्राथमिकताओं की ओर संकेत किया है। उसने ऐसा इसलिए नहीं किया कि सिर्फ हमको सही जानकारी दे। उसकी आशा है कि जो कुछ उसने दर्शाया है, हम उसके अनुकूल आचरण करें। यदि इस पुस्तक द्वारा हम तक पवित्र आत्मा की ललकार पहुँचती है, तो इसलिए कि हम उसका प्रत्युत्तर दें। प्रत्युत्तर न देना आत्मिक स्थिरता तथा मृत्यु को निमंत्रित करना है।

स्वतः का जीवन कितना दुर्बोध और मानविक मन कितना धोखा देने हारा! कितनी सुगमता से यह हमें सांसारिक सम्पदा का बन्दी बना देता है! वह कहता है, "अरे परमेश्वर का पूर्ण अनुकरण करने से संशयात्मक सन्तोष ही होता है। इसकी तुलना में ऐसी सम्पत्ति और सुख सुविधाएं कितना बहुमूल्य हैं—इन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। यह मसीही दौड़ किन्हीं सहज उपायों से अवश्य दौड़ी जा सकती है! जनमत भी ऐसे उत्कृट धर्मानुकरण के विपरीत है। हम गम्भीरता-पूर्वक न लें। परमेश्वर के लिए परिमित जीवन बिताएं!"

इस प्रकार के विश्वासपूर्ण विचार से परमेश्वर हमें छुटकारा देगा। हर एक रुकावट दूर कर निशाने तक बढ़ने में वह सहायता करेगा। उसकी आकाँक्षा है कि हम संसार के निम्न स्तरों को त्यागें और उसके सर्वश्रेष्ठ से कम में सन्तोष न करें। जिस व्यक्ति को परमेश्वर सम्मानित करेगा, उसकी दृष्टि में मनुष्यों के आदर की क्या कीमत? जब स्वर्गीय धन संचित है तो सांसारिक सम्पत्ति का क्या महत्व?

क्या आप स्वयं जीवन के लिए सांसारिक सुरक्षा की खोज में है? क्या आप विश्वास की हानि उठाकर किसी न किसी तरह इस सुरक्षा का निश्चय प्राप्त करना चाहते हैं? तो, मेरा विश्वास कीजिए, आप निश्चय-पूर्वक इसे खो देंगे। अन्त में दिखाने के लिए आपके पास कुछ न होगा।

अपना मन बदलिए! मसीह के लिए अपने जीवन की आहूति देने को तैयार रहिए। उसके सुसमाचार के लिए दुःख उठाइए। आपको कोई बर्बादी अथवा वास्तविक हानि नहीं हुई है। इसके विपरीत आपने जो बीज बोया है उसका अनन्त फल आपको प्राप्त होगा। जो बलिदान आपने उसके चरणों पर किया है, उससे बढ़कर आपको स्वर्गीय पुरस्कार प्राप्त होगा। क्योंकि "संसार और उसकी अभिलाषाएं दोनों मिटते जाते हैं, पर जो परमेश्वर की इच्छा पर चलता है, वह सर्वदा बना रहेगा" (1 यूहन्ना 2:17)। जिस दिन प्रभु अपनी महिमा में लौटेगा और वर्तमान क्रम न रह जाएगा, उसके समक्ष उसके अनुयायी अवर्णनीय आनन्द में सब त्याग भूल जाएंगे।

मुझे स्मरण है कि जब मैं छोटा था, तब मुझे प्रतिवर्ष 26 जनवरी को नई दिल्ली में आयोजित गणतन्त्र समारोह देखने ले जाया जाता था। इसी दिन राष्ट्रपति द्वारा बहादुरी के लिए राष्ट्र के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार वितरित होते हैं। बहुधा, जब मैं देखता था तो पुरस्कार लेने के लिए सामने वाला कोई व्यक्ति अज्ञात कनिष्ठ सिपाही होता था। उसका हाथ कटा होता था, अथवा कृत्रिम पैर

पर लंगड़ाते चलता था या युद्ध क्षेत्र में खाए हुए चोट के कारण किसी न किसी प्रकार से कुरूप होता था। तब पढ़ा जाता यह समझते हुए कि उसने पुरस्कार प्राप्ति के योग्य क्या वीरता की। अन्त में राष्ट्रपति उसकी छाती पर पदक लगाते। तब सहस्त्रों की संख्या में स्त्री पुरुष हर्ष से उस सिपाही के लिए चिल्लाते जिसने अपने प्राणों को हथेली पर रख देश की रक्षा की।

मैंने बहुधा सोचा है कि यह उस आगामी दिन की तस्वीर (यद्यपि कितनी धुंधली!) है जब हम स्वर्ग की महिमा में प्रवेश कर अपने प्रभु के समक्ष खड़े होंगे। तब स्वर्ग के उच्च पदाधिकारियों की उपस्थिति में उद्धार पाए हुए हजारों स्त्री पुरुषों को जो इस संसार में विश्वासयोग्य भण्डारी रहे, राजाओं का राजा पुरस्कृत करेगा। मैं उस दिवस की कल्पना कर सकता हूँ जब नाम पुकारने पर हनोक सामने जाएगा और उसके लिए पढ़ा जाएगा, "उसने परमेश्वर को प्रसन्न किया है"। हाँ, सम्भव है तीन सौ या उसके अधिक वर्षों तक इस संसार में वह उपहास का पात्र रहा हो। किन्तु अब स्वर्गदूतों द्वारा वाहवाही के गूँजा देने वाले शोर के मध्य, उसे युद्ध क्षेत्र में वीरता के लिए स्वर्ग के सर्वोच्च पुरस्कार से आभूषित किया जा रहा है। मैं यह भी देखता हूँ कि पौलुस प्रेरित अपनी पारी में सामने जाकर ऐसा ही सम्मान पाता है। पृथ्वी पर उसे धर्मार्थ एवं मूर्ख समझा जाता था; यहाँ उसके लिए जीवन का मुकुट रखा है। उस क्षण दुःख के सब वर्ष विस्मृत हो जाते हैं। उसके स्थान पर यह ज्ञात कर हर्ष होता है कि परमेश्वर प्रसन्न हुआ है: यही वह आनन्द है जो चिरकाल तक बना रहता है।

तब आपकी बारी आएगी और मेरी भी। प्रिय भाई और बहन तब क्या उक्ति पढ़ी जाएगी? जब हम वहाँ खड़े होंगे और इस पृथ्वी पर का हमारा धार्मिक आडम्बर, बाह्य दिखावा और हमारे जीवन से उतारा जाएगा, तब क्या बचा रहेगा? क्या उस दिन आपके खालीपन पर आपको सिर्फ दुःख की अनुभूति ही होगी? क्या आपको कटु पछतावा होगा कि आपने निरर्थक चुनाव किया तथा अवसर को सहज ही गवा दिया? आप अपना स्थान हनोक और पौलुस के साथ लेंगे? ये प्रमुख प्रश्न हैं तथा इनका सम्बन्ध मेरी कल्पना से नहीं किन्तु कटु सत्य से है। कुछ इसी तरह का दृश्य जिसका मैंने अस्पष्ट चित्रण किया है, वास्तव में मसीह के पुनः आगमन पर घटित होगा। हमें चितौनी दी गई है कि उसके आगमन पर बहुतेरे उसके सम्मुख लज्जित होंगे।

अतः हम उसके वचन पर गम्भीरता से ध्यान दें। हम जीवन की इन प्राथमिकताओं को गम्भीरता-पूर्वक लें, क्योंकि अनन्त महत्व इन्हीं पर निर्भर है। आज से हम दृढ़ निश्चय करें कि यीशु को सब बातों में सर्वोच्च स्थान देंगे।

हमें इस संसार में एक जीवन जीना है, एक दौड़ दौड़नी है जिसके लिए हमें बहुत त्याग करना होगा। किन्तु दौड़ का एक लक्ष्य है तथा जीवन का एक पुरस्कार है जिसकी तुलना में संसार की सब वस्तुएं बेकार तथा निरर्थक प्रतीत होंगी। क्योंकि जब हम राजा की उपस्थिति में प्रवेश करेंगे, तब संगीत भी इतना मधुर न होगा, जितने उसके स्वागत के ये शब्द: "धन्य हे अच्छे और विश्वासयोग्य दास, तू थोड़े में विश्वासयोग्य रहा।"

"देख, मैं शीघ्र आने वाला हूँ; और हर एक के काम के अनुसार बदला लेने के लिए प्रतिफल मेरे पास है।" (प्रकाशितवाक्य 22:12)